'मैथिली-मन्दिर'क प्रथम पुस्तक

श्रीराधाकृष्णौ जयति

अथ

मैथिली में बिहारी

अर्थात्

प्रसिद्ध 'बिहारी-सतसई'क मूल-सहित सर्वाङ्ग सुन्दर
मैथिली-पद्यानुवाद

अनुवादक—

दरभङ्गा-चकलान्तर्गत 'कहुआ'-ग्राम-निवासी

बाबू श्रीधनुषधारि दास

'मैथिली-वाचस्पति'

भूतपूर्व सम्पादक-'किसान-केसरी' (हिन्दी) तथा 'मिथिला-मित्र(मैथिली)



पौष-शुक्ल चतुर्दशी मंगल,
सन १३४३ साल।



—:o:—

प्रकाशक—
श्रीधनुषधारी दास, 'मैथिली-वाचस्पति'
अध्यक्ष—
मैथिली-मन्दिर
नया बाजार-रोड, सुजागंज,
भागलपुर सिटी।
—❊❊—

प्रथमावृत्ति १००० प्रति, मूल्य एक प्रतिक १ रु० मात्र

मुद्रक—
श्रीमिथिला प्रेस,
भागलपुर।





समर्पण

विविध-विरुदावली-विभूषित

महाराजाधिराज, मिथिलाधीश

श्रीमान् कामेश्वर सिंहजी बहादुर

के० सी० आइ० ई०, दरभङ्गाक

कमल-कुतूहल-कारक कमनीय कोमल करमें

मैथिली-साहित्योन्नतिक आन्तरिक अविकल अभिलाषामें ,

'मैथिली-मन्दिर'-भागलपुरक प्रथम पुस्तक

मैथिली मैं बिहारी

श्रद्धा-सहित, स-प्रेम, स-शंकित, सादर

समर्पित

श्रीमन् !

मैथिली-साहित्य उन्नति-कामनासौं मग्न भै ।
मैथिली-मन्दिर-स्थापन कैल अछि संलग्न भै ॥
मैथिली-साहित्य-उन्नति-विधि कराके ध्यान दी ।
मैथिली-मन्दिरक रक्षक भै कृपानिधि ! शान दी ॥

मैथिली-मन्दिर,
भागलपुर सिटी,
ता० ७ जनवरी १९३६ ई० ।

कृपाभिलाषी—
श्रीधनुषधारी दास,
अध्यक्ष ।

आशा

कीटोऽपि सुमनः सङ्गा—
दारोहति सतांशिरः ।
अस्मापि याति देवत्वं
महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥

—धनुषधारी

"मैथिली में बिहारी"
क

परिचय

हिन्दी-साहित्य-संसार में बिहारीलाल जी अपन "सतसई" क कारणें अक्षय कीर्ति लाभ कयने छथि। ई ग्रन्थ अपन सन अपनहि अछि। ई सात सौ श्रृङ्गार-रसात्मक दोहा कविक प्रतिभा कें स्पष्ट करैत हिन्दी-भाषा जननिहार रसिकवृन्द कें मर्माहत करैत आयल अछि और यावत् भूमंडल में रसिकता रहतैक तावत् करैत रहत।

ओहि दोहावली क अनुवाद बाबू धनुषधारी दास मैथिली-पद्य में कयलैन्ह अछि और "मैथिली-मन्दिर" ओकर नामकरण "मैथिली में बिहारी" कय ग्रन्थ-रूप में ओकरा प्रकाशित

कय रहल अछि। पाठ-क्रम लहेरियासराय के हिन्दी-पुस्तक-भंडार-द्वारा प्रकाशित सुबोध काव्य-माला क प्रथम ग्रंथ "बिहारी-सतसई" क अनुसारें राखल गेल अछि और अनुवादमे स्वर्गीय "रत्नाकर" जी क तथा श्रीयुत "बेनीपुरी"जी क टीका क आश्रय लेल गेलअछि।

हमरा पूर्ण आशा अछि जे विज्ञ पाठक-वृन्द एहि विषय पर दृष्टि राखि, जे ई अनुवाद थीक-टीका अथवा व्याख्या नहि—अनुवादक महोदय क प्रयत्न कें यथार्थतः प्रशंसनीय बुझताह। कारण जे ओ एक एहन कविक रचना कें मैथिलीक आवरण पहिरौलेन्ह अछि, जनिका में निम्न लिखित श्लोक नीक जेकाँ घटैत अछि। यथा—

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्॥"

श्रीनगर (पूर्नियाँ)
पौष शु० ५ श्री १३४३ साल। } श्रीगंगानन्द सिंह

पुस्तकाधिकारी

श्री ······ नागेन्द्र झा ······

स्थान ······ तरौनी ······

पो० ······ सकरी ······

जि० ······ दरभंगा ······

क्रय-स्थान ·········
···················
ता० ·········१९ ई०

हस्ताक्षर—
········ [signature] ········

प्रेमोपहार

सेवामें—

श्री……………

स्थान……………

पो॰ औ॰……………

जि॰……………

स्थान……………
……………
ता॰……………१६३ ई॰

त्वदीय—
……………



अनुवादक—बाबू श्रीधनुषधारी दास, 'मैथिली-वाचस्पति'।

दू शब्द

प्रिय मैथिली-प्रेमिगण !

श्रीयुत धनुषधारी दास "मैथिली-वाचस्पति" क नाम सँ मैथिली-साहित्यक प्रेमी सज्जन लोकनि अपरिचित नहि छथि। हिनक बनौल "मैथिली में बिहारी" —'बिहारी सतसई'क मूल-सहित सुन्दर मैथिली-पद्यानुवाद—देखबाक सुअवसर प्राप्त भेल अछि। 'बिहारी-सतसई' हिन्दी-भाषाक साहित्यमें एक अद्वितीय वस्तु बुझल जाइत अछि। और जे स्थान संस्कृत-भाषाक साहित्यमें 'गीतगोविन्द'कें छैक, सैह स्थान हिन्दी-भाषाक साहित्यमें 'बिहारी-सतसई'कें। अस्तु ! एहन अमूल्य रत्नक मिथिला-भाषामें पद्यानुवाद रहब मिथिला-भाषाक साहित्यक हेतुयें परमावश्यक

प्रतीत होइछ। सुतरां एहि अभावकें उपरोक्त "मैथिली में बिहारी" सुन्दर रीति सँ पूर्ति करत; तदर्थ 'दास'जी यथार्थतः धन्यवादार्ह—थिकाह। मूल 'बिहारी-सतसई'क पद-लालित्यकें हूबहू रखबामें 'दास'जी जे पटुता देखौलैन्हि अछि से पाठकवृन्दकें स्वयं ज्ञात होयतैन्हि। कहबाक तात्पर्य जे एहि प्रकारक ग्रन्थादि सँ मैथिली-साहित्यक भण्डारक यथार्थमें पूर्ति होयबाक आशा सर्वथा कयल जाइत अछि। और सम्प्रति मैथिली-साहित्यक भण्डारक सफलतापूर्वक वृद्धि करबाक विद्वन्मण्डलीमें जे जागृति तथा उत्साह दृष्टिगोचर होइछ से ओकर द्योतक थीक।

एहि ठाम यह बातक उल्लेख कयदेब आवश्यक बुझना जाइछ जे मैथिलीक उन्नतिक पथपर नाना प्रकारक विघ्न और बाधा किछु दिन पूर्व दृष्टिगोचर होइत छल, परन्तु हर्षक विषय थीक जे मैथिलीक सेवा कयनिहार व्यक्ति लोकनीक उद्योग बहुत शीघ्रता सँ अग्रसर भय रहल अछि। सुतरां एकरा विरुद्धमें किछु दीन पूर्व जे विघ्न और बाधा विशालकाय ज्ञात होइत छल, से क्रमशः क्षीण भय रहल अछि। "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" ईहो आवश्यके थीक।

परन्तु तँ अपन कर्तव्य-पथ सँ विचलित होयब उचित नहि। प्रत्युत ओहना स्थितिमें हमरा लोकनिकें उचित थीक जे द्विगुण गति सँ मैथिलीक सेवामें लागि जाइत जाइ।

अन्तमें समस्त मैथिलीक प्रेमी भ्रातृगण सँ प्रार्थना जे मैथिली-ग्रन्थ-प्रकाशनक जे जे उद्योग भय रहल अछि, ताहि सभमें यथासाध्य साहायता करथि। कारण जे एहन-एहन कार्य दू-चारि-दश व्यक्तिक नहि थीक। एकरा एक प्रकारक यज्ञ बुझबाक थीक। सुतरां जाहि प्रकारें कोनो यज्ञ-विशेषमें विराट आयोजनक आवश्यकता होइत अछि, ओही तरहें मातृभाषाक उद्धार-रूप यज्ञमें सबकें लागि जायब उचित तथा आवश्यक थीक। इत्यलम्।

भवदीय—

पुर्नियाँ,
ता० – ५ – १ – ३६

श्रीविद्यानन्द ठाकुर
एम्० ए०, बी० एल०]



नम्र निवेदन

श्रद्धेय मैथिली-प्रेमिगण !

काव्योचित सकल गुण-विभूषित 'बिहारी-सतसई'क महानता एवम् लोक-प्रियताक सम्बन्धमें एहि स्थानपर विशेष प्रकाश राखब हम अनावश्यक बुझैत छी। कारण जे एकरा सम्बन्धमें चिरकालसौं अनेकानेक अधिकारी विद्वान् लोकनिक द्वारा पूर्ण-रूपें चर्चा होइत आयल अछि तथा नित्यप्रति भै रहल अछि एवम् भविष्यमें औरो होयबाक अधिक सम्भावना। 'बिहारी-सतसई'क महानता एवम् लोक-प्रियताक प्रमाण एहिसौं अधिक और की भै सकैछ; जे स्वर्गीय श्रीयुत 'रत्नाकर'जीक कथनानुसार ५२ टीका; किन्तु आब तौं लगभग ६५ टीका एकर भै चुकल अछि एवम् दिनानुदिन एक-सँ-एक नवीनताकें रखैत औरो टीका सब भै रहल अछि। स्वर्गीय पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, साहित्याचार्य स्वर्गीय पण्डित पद्म-सिंह शर्मा, स्वर्गीय पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र, स्वर्गीय लाला भगवान दीन, स्वर्गीय बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' बी० ए०, श्रीयुत पण्डित रामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी' एवम् श्रीयुत 'प्रीतम'जीक समान शताधिक साहित्य-महारथी लोकनि जाहि 'बिहारी-सतसई'क सम्बन्धमें सर्वाङ्ग सुन्दर, विशद एवम् विवेचना-पूर्ण टीका, भाष्य, निबन्ध, प्रबन्ध, आलोचना, प्रत्या-लोचना इत्यादि लिखि अपनाकें कृत्य-कृत्य बुझैत, सम्पूर्ण साहित्य-संसारकें गौरवान्वित, आनन्दित एवम् आश्चर्यित करैत गेलाह अछि, ताहि 'सतसई'क सम्बन्धमें एहि स्थानपर किछु विशेष व्याख्या, करब हमरा अपना क्षुद्र बुद्धिक अनुसार डंकाक गगन-प्रकम्पन-कारक शब्दक सम्मुख सूप बजेबाक समान अनावश्यक एवम् हास्यास्पद होयत। संसारक कोनो सजीव भाषा एहन नहि अछि जाहिमें 'बिहारी-सतसई'क चर्चा नहि भेल हो। संस्कृत बँगला, उर्दू, गुजराती, महाराष्ट्री एवम् अंग्रेजी आदि कोनो

एहन माननीय भाषा शेष नहि अछि, जाहि द्वारा 'बिहारी-सतसई'क सम्मान नहि कैल गेल हो; तखन राष्ट्र-भाषा हिन्दीक तँ कथे की? कारण जे ओकर तँ ई सुन्दर, सरल एवम् संसार-सम्मानित 'सतसई' अपन अमूल्य धरोहरे थिकैक। तखन यदि हिन्दीमें एकर ४०-५० टीका भैये गेल तँ ई कोनो आश्चर्य एवम् अधिक सन्तोषक विषय नहि थीक। हमर अपन ई अविचल एकान्त अनुमान अछि जे अद्यावधि एहन एको टा हिन्दी ग्रन्थ प्रायः नहि भेटत जकर ६०-६५ टीका भेल हो। एहिसौं अधिक 'बिहारी-सतसई'क महानता एवम् लोक-प्रियताक सम्बन्धमें और की कहल जा सकैत अछि? अतएव एहन आदरणीय ग्रन्थ-रत्नक जाहि कोनो सजीव भाषामें कोनो प्रकारक टीका एवम् चर्चा विशेष रूपें नहि भेल हो, ओहि भाषाक चिन्तनीय दुर्भाग्य नहि तँ और की बूझल जा सकैत अछि?

साहित्य-सम्पत्ति-सम्पन्न मैथिली सेहो एक अत्यन्त प्राचीन, स्वतन्त्र एवम् सु-व्यवस्थित भाषा थीक। मैथिलीक सेवा कैनिहार ६० सौं अधिक प्राचीन विद्वान् शताधिक मैथिली—ग्रन्थ-रत्नक रचना कै मैथिलीकें गौरवान्वित कै गेलाह अछि एवम् वर्तमान कालहुँ मे ५० सौं अधिक मैथिली-विद्वान् मैथिलीक उद्धार-रूपी यज्ञक अनुष्ठान कै रहलाह अछि। ई सर्व-मान्य विषय थीक जे कोनहु भाषा सजीव-भाषा-श्रेणीमें परिगणित होयबाक अधिकारी मानल जाइछ, जकर साहित्य-भंडार सब प्रकारक ग्रन्थ-रत्नसौं पूर्ण छैक एवम् ओकर अपन स्वतन्त्र लिपि (अक्षर) सेहो होइक। हमरा जनैत उपर्युक्त एको विषयक मैथिलीकें अभाव नहि छैक। एकर साहित्य-भण्डार सेहो—प्रकाशित एवम् अ-प्रकाशित ग्रन्थ सबसौं—पूर्ण जेकाँ अछि। किन्तु आवश्यकता अछि सु-व्यवस्थित प्रकाशन-व्यवस्थाक। जे हेतु संसारकें ई बुझबाक योग्य नहि होइत छैक जे अखनहु अनुमान एक हजारसौं अधिक मैथिली-ग्रन्थ-रत्न विद्यमान अछि। मैथिलीक बजनिहारो दू करोड़क लगभग मनुष्य छथि। कारण जे हमरा विचारानुसार मैथिलीक क्षेत्र भागलपुर, पुर्नियाँ, मुंगेर,

सन्थाल परगना, मोतिहारी, मुजफ्फरपुर एवम् दरभंगा जिलाक सहित नेपाल-तराईमें विराट नगरसौं वीरगंज पर्यन्त अछि।

एहन परिस्थितमें 'बिहारी-सतसई'क मैथिलीमें कोनो प्रकारक सन्तोष-प्रद चर्चा होइत नहि देखि, मैथिलीक हेतु ई महान् लांछनाक विषय हमरा बुझि पड़ल एवम् ओ अत्यन्त असह्य सेहो भै गेल। अतएव हमरा अपन अप्रमेय साहित्य-दुर्बलताक पूर्ण ज्ञान रहितहुँ अन्तरात्माक अविचल प्रेरणासौं 'बिहारी-सतसई'क मैथिली-पद्यानुवाद करबाक हेतु विवश भै गेलहु। ओही विवशताक ई दुस्साहस-पूर्ण परिणाम थीक जे आइ ई 'मैथिलीमें बिहारी' अपने लोकनिक हस्तगत अछि। एहि ग्रन्थक रचना हम अही एकान्त अभिप्रायसौं कैल अछि, जे एहिमें जे किछु अवा-ञ्छनीय त्रुटि सब भै गेल अछि—जकरा स्वीकार करबाक हेतु हम सर्वदा, सहर्ष प्रस्तुत छी—तकरा सबकें देखि भविष्यमें मैथिलीक अधिकारी विद्वान् लोकनि अग्रसर भै 'बिहारी-सतसई'क सर्वाङ्ग सुंदर टीकाक जे अभाव अछि, तकरा अवश्य पूर्ण करत, मैथिली-साहित्य-श्रीवृद्धि अवश्य कर-ताह। कारण जे तीत वस्तुक जीहा पर ओकर प्रभावकें नष्ट करबाक हेतु शीघ्र-प्रभावोत्पादक कोनो शीतल एवम् सु-मधुर वस्तु खायब आवश्यक एवम् स्वाभाविके थीक।

'मैथिलीमें बिहारी'क रचना हम बिहारक हिन्दी-गद्य-पद्य-साहित्यक प्रकाण्ड पण्डित, देश-भक्त, एवम् युवकाग्रगण्य श्रीयुत प० रामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी'जीक 'बिहारी-सतसई'क टीकाक आधारपर कैल अछि। दोहाक क्रम तथा पाठो ताही अनुसारे राखल गेल अछि। ए, कतहु-कतहु 'बिहारी-रत्नाकर'हुँक टीकाक अनुसार अनुवाद कैल गेल अछि एवम् दोहाक पाठ सेहो तदनुसारे राखल गेल अछि। किन्तु एहन अवसर बहुत थोड़ स्थानमें आयल अछि। अतएव अनुवाद तथा मूलमें जिनका कोनो प्रकारक सन्देह उत्पन्न होइन ओ लोकनि कृपया मूल-सहित उपर्युक्त दुनू टीकाकें देखि लेबाक अवश्य कष्ट करथि। हम जखन 'बिहारी-सतसई'क

मैथिली-पद्यानुवाद करबाक निश्चय कैल, ताहिसौँ पूर्व 'सतसई'क प्राचीन एवम् नवीन अनेक टीकाकेँ अवलोकन करबाक सु-अवसर प्राप्त भेल छल। किन्तु हमरा अपना साधारण बुद्धिक अनुसार 'वेनीपुरी'जी एवम् 'रत्नाकर'जीक टीका सेहु सबसौँ सरल, सुन्दर, सु-पाठ्य एवम् प्रामाणिक बुझि पड़ल। जे हेतु हम 'मैथिलीमें-बिहारी'क आधार उपर्युक्त दूनू टीकाकेँ राखल। अतएव हम उपर्युक्त दूनू टीकाक टीकाकार एवम् प्रकाशक लोकनिक अत्यन्त कृतज्ञ छी।

हमर बहुत अभिलाषा छल जे 'मैथिलीमें बिहारी'क भाषा-शैली ऐके प्रकारक पूर्ण परिमार्जित-रूपसौँ रहै। किन्तु से नहि भै सकल। जाहि हेतु हमरा अत्यन्त मनोदुःख अछि। अतएव हम एहि हेतु करबद्ध क्षमाप्रार्थी छी। आशा जे पुस्तकक द्वितीय प्रकाशनमें एहि विषयक पूर्ण ध्यान राखल जायत।

ई पुस्तक जखन 'श्रीमिथिला प्रेस' भागलपुरमें छपबाक हेतु देल गेल छल—दूइ फर्मा छपियो गेल छल—तखनहि हमरा ऊपर अचानक एक दैवी-विपत्तिक पहाड़ खसि पड़ल! हमर साक्षात पितियौत कनिष्ठ भ्राता बाबू मथुरापति दास—जे मोतिहारीमें फौजदारी-कोर्टमें पेशकार छलाह—पूर्वसौँ क्षुभित रहबाक कारणे पटनामें चिकित्सा करबितहिँ गत ता० १७ सितम्बर १९३५ ई०, तदनुसार भाद्र-बदि त्रयोदशी-मंगलकेँ हमरा परिवार-मात्रकेँ सर्वदाकेहेतु शोक-सागरमें राखि, लगभग ३०वर्षक अवस्थामें स्वर्ग-वासी भै गेलाह। तथापि भ्रातृ-मृत्यु-जन्य महान् शोककेँ जेन-केन-प्रकारेण हृदयमें दबाय, एहि अभागल पुस्तकक प्रकाशन-कार्य बन्द नहि कै कोनहु प्रकारेँ एकरा प्रकाशित कै अपने लोकनिक सेवामें उपस्थित कैल अछि। यदि ओ जिबैत रहितथि तौँ ई पुस्तक सर्वाङ्ग सुन्दर एवम् सचित्र रूपमें प्रकाशित होइत। आब तौँ मनक सब उत्साह एवम् सब अभिलाषाक हेतु एतबे कहक पर्यन्त अछि जे—"ऊधो! मनकी मनहि रही!!।" अतएव एहि पुस्तकमें जे कोनो त्रुटि रहि गेल अछि, तकर कारण

कनिष्ट-भ्रातृ-शोक-कातर-हृदयक दुर्बलता मात्र थीक—जे अवश्यम्भावी थीक। अतएव—'क्षन्तव्योमेपराधः।'

दृढ़ निश्चय-पूर्वक जे कोनो कार्य्य प्रारम्भ कैल जाइत अछि, कतबो विघ्न-बाधा उपस्थित भेलो सन्ता ओ कार्य्य अवश्य सम्पन्न होइछ। आनु-शोकसौँ हृदय असीम दुःखित रहितहु मैथिली-सेवा करबाक चिरसञ्चित आन्तरिक अविचल अभिलाषा कार्य्य-रूपमें परिणत भैये टा गेल। मैथिली-साहित्योन्नतिमें अनेकानेक अन्यान्य कठिनता सबक संग मैथिली-प्रकाशन-संस्थाक सर्वथा अभावो एक महान् बाधक प्रमाणित भै रहल अछि। ताही उद्देश्यसौँ आधुनिक नवीन प्रकाशन-प्रणालीक अनुसार केवल मैथिली-ग्रन्थ सब प्रकाशित करबाक अभिप्रायसौँ एवम् यत्र-तत्र प्रकाशित मैथिली-पुस्तक सबकेँ एकत्र कै विक्रय करबाक प्रबल इच्छासौँ हम स्वयं स्वतन्त्ररूपें एक 'मैथिली-मन्दिर'क स्थापना कैल अछि। जकर नियमावली पुस्तकक अन्तमें देल गेल अछि। ओही 'मैथिली-मन्दिर'क प्रस्तुत ग्रन्थ प्रथम पुस्तक थीक एवम् अन्यान्यो पुस्तक सब प्रकाशित करबाक जोगार भै रहल अछि। जकर सूचना सेहो पुस्तकक अन्तमें पढ़बाक कष्ट कैल जाय। किन्तु ई महान् कार्य्य बिना समस्त मैथिली-प्रेमी-सज्जन-समुदायक सब प्रकारक पूर्ण सहायताक होयब असम्भवे थीक। अतएव सकल मिथिला-निवासी लोकनिसौँ हमर करबद्ध प्रार्थना जे अपने लोकनि सब प्रकारक समुचित सहायता कै एवम् अपन इष्ट-मित्रादिसौँ कराय 'मन्दिर'केँ व्यापक, प्रभावशाली एवम् लोक-प्रिय बनेबाक अवश्य कृपा कैल जाय।

ई लिखैत हमरा असीम आनन्द होइत अछि जे मिथिला-मध्याह्न-मार्त्तण्ड, पूज्यपाद श्रीश्रीमान् कुमार गङ्गानन्द सिंहजी बहादुर एम० ए०, एक सुन्दर, सारगर्भित एवम् सुवेमान्य 'परिचय' (भूमिका) लिखि एहि तुच्छातितुच्छ पुस्तककेँ गौरवान्वित करैत हमरा चिरउपकृत करबाक कृपा कैलनि अछि। अतएव हमर शिर हुनका सेवामें आजीवन श्रद्धा-सहित सर्वदा भुकल रहत।

हम दरभङ्गा-राजकोष-धौत-परीक्षोत्तिर्णं, श्रद्धास्पद, श्रीमान् पण्डित गौरीनाथ झाजी 'व्याकरणतीर्थ'क कृपाके आजन्म बिसरि नहि सकैत छी। कारण जे ओ अपना अधीनस्थ 'श्रीमिथिला प्रेस'में यत्नपूर्वक एहि पुस्तकके छपबाक व्यवस्था कै देबाक कृपा कैलनि अछि। तात्काल हमरासौं छपाइ एवम् कागज इत्यादिक सम्बन्धमें एकोपाइ एडभांस नहि लेल गेल अछि। एहन कृपा ओ नहि करितथि तौं पुस्तक प्रकाशित होयब कठिन छल। एतदर्थ हम हुनक अत्यन्त ऋणी छी।

हम पूज्य कविवर मु० श्रीयुत रघुनन्दन दासजी (सखबाड़)क अत्यन्त कृतज्ञ छी, जे ओ 'मैथिलीमें बिहारी'के कृपापूर्व आदिसौं अन्त पर्यन्त देखि सत्परामर्श देबाक कृपा कैलनि अछि; जे एहि पुस्तकमें अधिकांश ग्रहण कैल गेल अछि। संग-संग श्रद्धेय श्रीयुत विद्यानन्द ठाकुरजी, एम० ए० बी०, एल्०, पूर्नियांक अप्रमेय आभारी छी, जे ओ एक संक्षिप्त किन्तु सार-गर्भित 'दू शब्द' लिखि देबाक कृपा कैलनि अछि।

'श्रीमिथिला' प्रेस, भागलपुरक सु-योग्य कर्मचारी मित्रवर श्रीयुत शारदानन्द ठाकुर (रामनगर-भागलपुर) श्रीयुत प्रेमनाथ झाजी (उजान-दरभङ्गा), श्रीयुत क्षमानाथ ठाकुर (रामनगर-भागलपुर), श्रीयुत दीनानाथ झा 'आयुर्वेद-रत्न' (मइरैल-दरभङ्गा), श्रीयुत वेदानन्द झा (कर्णपुर-दरभङ्गा), श्रीयुत जगदीश मिश्र (शशिपुर-दरभङ्गा), श्रीयुत सत्यदेव मिश्र 'आयुर्वेद-विशारद' (महिषी-भागलपुर), श्रीयुत सिद्धेश्वर झा (अन्धराठाढ़ी-दरभङ्गा), मु० श्री सुरेशचन्द्र सिंह (दारा-सखवाड़ा-भागलपुर), बाबू श्रीरघुनाथ दास 'गरीब' (बेलारही-दरभङ्गा) एवम् अन्यान्यो व्यक्ति लोकनि अत्यन्त धन्यवा-दाई छिकाह। कारण जे पुस्तकके छपबाक समयमें हार्दिक तत्परता देखौलनि।

एहि स्थानपर हम ई कदापि नहि बिसरि सकैत छी जे राजधानी कृष्णगढ़, सुल्तानगंजक प्रधान कर्मचारी मु० श्रीरामदेव प्रसाद, मु० श्रीयदुनन्दन कण्ठ (बिसहथा-दरभंगा) मु० श्रीशशिधर नारायण दास (बेलारही-दरभंगा) एवम् मु० श्रीरूपनारायण दास (जगन्नाथपुर-पुर्नियां)

लोकन एहि पुस्तकके छपबाक समय जे जे कोनो विघ्न-बाधा सब उपस्थित भेल तकरा सबके निवारण करबामें हमर पूर्ण सहायता करैत गेलाह। श्रीयुत महेन्द्रचन्द्र पाण्डेय 'रसेन्द्र' (फुलवड़िया-भागलपुर) क तेहो हम परम कृतज्ञ छी। कारण जे जाधरि पुस्तक छपल ताधरि ओ हमरा रहबा इत्यादिक सुन्दर व्यवस्था कै देलनि।

अन्तमें हमर समस्त मैथिली-साहित्य-प्रेमी एवम् मिथिला-निवासी-सकल महानुभावसौं करबद्ध प्रार्थना अछि, जे एहि—'मैथिलीमें बिहारी'—में जे कोनो त्रुटि रहिगेल हो—जकर हमरा पूर्ण विश्वास अछि—तकरा क्षमा करैत उचित परामर्श-देबाक कृपा कै एकर प्रचारमें पूर्ण सहायक होइ जाइ। इत्यलम्।

'मैथिली-मन्दिर'
भागलपुर सिटी।
ता० ७—१—३६ ई०

विनीत—
श्रीधनुषधारी दास,
अनुवादक।

स्थान-परिवर्तन



अपने लोकनिकेँ प्रायः ज्ञात होयत जे पूर्व 'मैथिली-मन्दिर'क कार्य्यालय कृष्णगढ़, सुलतानगंजमें छल। किन्तु प्रचार एवम् प्रेसक सुविधाक कारणे 'मन्दिर'क कार्य्यालय आब उठि कै भागलपुर चल आयल अछि। अतएव आब निम्न लिखित पतासौं पत्रव्यवहार इत्यादि करब उचित।

पता—

श्रीधनुषधारी दास,

अध्यक्ष—

'मैथिलि-मन्दिर'

नयाबाजार-रोड, सुजागंज

भागलपुर सिटी।

[ता०-८-१-३६] —अध्यक्ष।

श्रीराधाकृष्णो जयति

अथ

मैथिली में बिहारी



मंगल-कामना

जयति जननि राधे ! विश्व-आदर्श नारी।
सफल हमर हो ई कामना अम्ब ! भरी॥
अहिँक पद-भरोसे लेखनी कैल कारी।
'धनुष' जगत देखै "मैथिलीमें बिहारी"॥

पहिल शतक

[१]

मेरी भव-बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तनकी झाँई परै, स्याम हरित दुति होय॥

'धनुष' हरथु मम जगतक बाधा, नेह सुचतुरा राधा अम्ब !
जनिक तनक छाया पड़लासौं, हो हरि-द्युति हरियर अविलम्ब॥

[२]

सीस-मुकुट, कटि-काछनी, कर-मुरली, उर-माल।
यहि बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल॥

शीश-मुकुट, कटि-पीत-काछनी, कर-मुरली, शोभित उर-माल।
हमरा मनमें एहि वेशसौं, 'धनुष' सर्वदा बसू गोपाल !

[३]

मोहनि मूरति स्यामकी, अति अद्भुत गति जोय ।
बसति सुचित अन्तर तऊ प्रतिबिम्बित जग होय ॥

हरिक मोहिनी मूर्तिक गति अछि, अति आश्चर्यक देखल जाय ।
रहै स्वच्छ हृदयक बिच तैयो—'धनुष' विश्वभरि झलक लखाय ॥

[४]

तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति करु अनुराग ।
जिहिँ ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग-पग होत प्रयाग ॥

तीर्थ करयकेँ छोड़ि 'धनुष' करु, राधा-हरि-तन-द्युति-अनुराग ।
जनिक केल ब्रज-क्रीड़ासौँ हो, पद-पद कुञ्जक मार्ग प्रयाग ॥

[५]

सघन-कुंज-छाया सुखद, सीतल, मन्द, समीर ।
मन ह्वै जात अजौँ वहै, वा जमुनाके तीर ॥

सघन-कुंज-छाया सुखदा, बह—'धनुष' मन्द, शीतल सु-समीर ।
अखनहुँ मन ओहने भै जाइछ, जैतहिँ ओहि तरणिजा-तीर ॥

[६]

सखि! सोहति गोपालके, उर गुंजनकी माल ।
बाहर लसति मनो पिये, दावानलकी ज्वाल ॥

हे सखि! हरिक हृदयपर शोभै, 'धनुष' लाल करजनिक सु-माल ।
बाहर शोभा दैछ यथा हो, पूर्व पियल दावानल-ज्वाल ॥

[७]

जहाँ-जहाँ ठाढ़ो लख्यो, स्याम सुभग-सिर-मौर ।
उनहूँ बिन छिन गहि रहत, दृगनि अजहुँ वह ठौर ॥

जहँ-जहँ ठाढ़ लखल हम हरिकेँ, 'धनुष' सुभग-शिर-छत्र-महान ।
हुनका बिनहुँ छणिक गहि रखइछ, दृग दुहुकेँ अखनहुँ ओ स्थान ॥

[८]

चिरजीवो जोरी, जुरै—क्यों न सनेह गँभीर ?
को घटि ? ये वृषभानुजा, वे हलधरके बीर ॥

'धनुष' होथु चिरजीवी जोड़ी, हैत किये नै प्रेम गँभीर ?
के घटि ? वृषभानुजा थिकी ई, ओ हलधरक भाय बरवीर ॥

[९]

नित-प्रति एकतही रहत, बैस, बरन, मन एक ।
चहियत जुगल किसोर लखि, लोचन जुगल अनेक ॥

'धनुष' रहथि नित-प्रति संगहिँ, ओ—वयस, वर्ण, मन दुहुक एक ।
चाही राधा—हरि—देखबाले, जोड़ा आँखिक अवश अनेक ॥

[१०]

मोर-मुकुटकी चन्द्रिकनि, यौं राजत नँदनन्द ।
मनु ससि-सेखरके अकस, किय सेखर सत-चन्द ॥

मोर-मुकुट-चन्द्रिका सबहिसौँ, यहि विधि शोभित छथि नँदनन्द ।
मानू शिवक डाहसौँ केलनि, 'धनुष' श्याम शिरपर शत चन्द ॥

[११]

नाचि अचानकही उठे, बिन पावस बन मोर ।
जानतिहौँ नन्दित करी, यहि दिसि नन्दकिसोर ॥

नाचि अचानक उठल विपिनमेँ, 'धनुष' बिना पावसक सु-मोर ।
बूझि पड़ैछ केल आनन्दित, यहि दिशकेँ श्रीनन्दकिशोर ॥

[१२]

प्रलय-करन बरषन लगे, जुरि जलधर इक साथ ।
सुरपति-गर्व-हर्यो हरषि, गिरिधर गिरि धरि हाथ ॥

'धनुष' प्रलय करबाले वर्षय—लागल मिलि सब जलधर संग ।
हर्षित भै गिरिकेँ करमेँ धै, इन्द्रक गर्व केल हरि भंग ॥

[१३]

द्रिगत पानि, डिगुलात गिरि, लखि सब ब्रज बेहाल ।
कम्प किसोरी-दरस तें, खरे लजाने लाल ॥

'धनुष' हिलं कर, डगमगाय गिरि, लखि व्रजवासी सब घबड़ाथि ।
'राधा-दर्शनसौं तन काँपल'—से बुझि हरि अति मनहि लजाथि ॥

[१४]

लोपे, कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल ।
गिरिधारी राखे सबै, गो, गोपी, गोपाल ॥

पूजा-विनुसँ क्रुध इन्द्र तक, चाहल प्रलय करक बिन काल ।
'धनुष' सबक हरि रक्षा कैलनि, गिरिधें गो, गोपी, गोपाल ॥

[१५]

लाज गहो, बेकाज कत, घेरि रहे ? घर जाँहि ।
गोरस चाहत फिरत हो, गोरस चाहत नाँहि ॥

लाज करह, घेरह अकाज की ? 'धनुष' जाइछी हम सब गेह ।
दही-दूध तोहरा नहि चाही, इन्द्रिय-रससौं राखह नेह ॥

[१६]

मकराकृत गोपालके, कुण्डल सोहत कान ।
धस्यो मनो हिय-गढ़-समर, ड्योढ़ी लसत निसान ॥

मत्स्याकृत कुण्डल शोभित अछि, कृष्णक कान-मध्य अति नीक ।
'धनुष' हृदय-गढ़ मदन समैला, मानू द्वार लसित ध्वज ठीक ।

[१७]

गोधन ! तू हरष्यो हिये, घरीक लेहि पुजाय ।
समुझि परैगी सीसपर, परत पसुन के पाय ॥

गोधन ! तों हियसँ हर्षित भै, 'धनुष' घड़ी भरि लैह पुजाय ।
शिरपर पशुगण-पद पड़लासौं, बुझि पड़तहु, जैबह थकुवाय ।

[१८]

मिलि परछाहीं जोन्हसौं, रहे दुहुनके गात ।
हरि-राधा इक संगही, चले गलीमें जात ॥

दुहुक देह मिलि रहल चन्द्रिका,-ओ छायामें अति कमनीय ।
'धनुष' जाथि सँग-सँग हरि-राधा, गली-मध्य आनन्दित हीय ॥

[१९]

गोपिन-सँग निसि सरदकी, रमत रसिक रस रास ।
लहाछेह अति गतिनकी, सबनि-लखे सब पास ॥

'धनुष' शरद्-निशि-गोपिगणक सँग, सरस रासमें रमथि मुरारि ।
द्रुत-लय-नृत्यक अति गति सबसौं, सब थल लख हरिकें सब नारि ॥

[२०]

मोर चन्द्रिका ! स्याम-सिर, चढ़ि कत करति गुमान ?
लखिबी पायन पै लुठत, सुनियत राधा-मान ।

मोरचन्द्रिके! हरि-शिरपर चढ़ि, किये करैछें गौरव बाज ?
'धनुष' लखब औँहड़ाइत पदपर, राधा-मान सुनल अछि आज ॥

[२१]

सोहत ओढ़े पीत-पट, स्याम सलोने गात ।
मनो नील-मणि-शैलपर, आतप परयो प्रभात ॥

सुभग श्याम-तनपर ओढ़ने छवि, पीताम्बर यहि विधि घनश्याम ।
'धनुष' नीलमणि-गिरिपर प्रातक, यथा पड़ल हो रौद्र ललाम ॥

[२२]

किती न गोकुल कुल-बधू ? काहि न किन सिख दीन ?
कौनै तजी न कुल-गली ? ह्वै मुरली-सुर-लीन ॥

कुल-पुतोहु गोकुलमें कत नहि ? ककरा के नहि शिक्षा देल ?
'धनुष' लीन वंशी-सुरमें भै, के कुल-मान न तजइत भेल ?

[२३]

अधर धरत हरिकै परत, ओठ-डीठि-पट-ज्योति ।
हरित बाँसकी बाँसुरी, इन्द्र-धनुष-रँग होति ॥

अधर-उपर बंशी धरितहि, हरि—ओठ-आँखि-पट-ज्योति अनूप ।
'धनुष' हरित बाँसक बंशी हो, इन्द्र-धनुष-सदृश रँग-रूप ॥

[२४]

छुटी न सिसुताकी झलक, झलक्यो जोबन अंग ।
दीपत देह दुहून मिलि, दिपत ताफता-रंग ॥

नहि नैनमतिक झलक छूटल ओ,—झलकल समर्थाइ प्रति अंग ।
'धनुष' दुहू मिलि चमकि रहल अछि, अंग-कान्ति धुपछाहक रंग ॥

[२५]

तिय-तिथि, तरनि-किसोर-वय पुन्य-काल सम दौन ।
काहू पुन्यनि पाइयत, बैस-सन्धि-संक्रौन ॥

'धनुष' तीय-तिथि, रवि-किशोर-वय, पुण्य-काल-सम दुहुक सु-योग ।
वयःसन्धि-संक्रान्ति कोनो हो, अति पुण्यहिं सौं ककरो भोग ॥

[२६]

लाल ! अलौकिक लरिकई, लखि-लखि सखी सिहाति ।
आज–कालिमें देखियत, उर उकसौं ही भाँति ॥

नैनमति लखि-लखि 'धनुष' विचित्र, श्याम ! सखिक सब सखी सिहाय ।
आइ-काल्हिअहिंमें उठल-सन, उर पड़ देखि, कहल नहि जाय ॥

[२७]

भावक उभरौहौं भयो, कछुक पर्‌यौ भरु आय ।
सीप-हराके मिस हियौ, निसि-दिन देखत जाय ॥

'धनुष' उठल-सन किछु-किछु उर छनि, भार सेहो किछु-किछु गेल आय ।
मोती-माल-लाथसौं उर-दिशि, अनुखन तकइत बीतल जाय ॥

[२८]

इक भीजे, चहले परे, बूड़े, बहे हजार ।
कितो न औगुन जग–करत, नै, वै चढ़ती बार ?

क्यो भीजै, क्यो दलदलिमें पड़, डूबल, बहल हजार-हजार ।
नदी-बहिकम चढ़क समयमें, 'धनुष' करै जग-हानि अपार ॥

[२९]

अपने तनके जानिकै जोबन-नृपति प्रबीन ।
स्तन, मन, नयन, नितम्बको, बड़ो इजाफा कीन ॥

यौवन-रूपी चतुर नृपति बुझि, स्व–तन, 'धनुष' कौलनि ई काज ।
तन, मन, नयन,-स्तन, नितम्बकें, बढ़ती देलनि जानि स्व-राज ॥

[३०]

देह दुलहियाकी बढ़ै, ज्यौं-ज्यौं जोबन-जोति ।
त्यौं-त्यौं लखि सौतिन सबै, बदन मलिन-दुति होति ॥

बहुआसिनि-तनमें जौं-जौं बढ़, 'धनुष' समर्थाइक अति ज्योति ।
लखि सौतिन सबहक मुख-द्युति हो, तौं-तौं मलिन, लैछ शिर गोंति ॥

[३१]

नव-नागरि-तन–मुलुक-लहि, जोबन-आमिल जोर ।
घटि बढ़ि ते बढ़ि घटि रकम, करी और-की-और ॥

तिय-तन-रूपी देश पाबि नव, 'धनुष' युवा—शासक बलवान ।
घटल बढ़ाकें, बढ़ल घटाकें, कर कैं देलक आन-क-आन ॥

[३२]

लहलहाति तन-तरुनई, लचि लगि-लौं लफि जाय ।
लगे लंक लोयन भरी, लोयन लेति लगाय ॥

'धनुष' तरुणता तन-उमड़ल अछि, छड़ी-समान लचकि लचि जाय ।
कटि सौन्दर्य-पूर्ण लक्षित हो, दृगकें निज दिशि लैछ लगाय ॥

[३३]

सहज सचिक्कन, स्याम-रुचि, सुचि, सुगन्ध, सुकुमार ।
गनत न मन पथ-अपथ लखि, बिथुरे सुथुरे बार ॥

'धनुष' अद्भुत, चिक्कन, कारी, सुचि, सुगन्ध, कोमलतागार ।
खूजल सुन्दर केश देखि मन, कुपथ-सुपथ नहि करै विचार ।

[३४]

वेई कर, ब्यौरनि वहै, ब्यौरो कौन बिचार ?
जिनही उरझ्यौ मो हियो, तिनही सुरझे बार ॥

'धनुष' येह कर, थकरब ओहने, रेसन ! कर विचार.की भेद ?
जनिकासौं मम हिय उलझल अछि, केश सेह सोझराबथि येह ॥

[३५]

कच समेटि कर, भुज उलटि, खए सीस-पट डारि ।
काको मन बाँधै न यह, जूरो बाँधनिहारि ?

भुज उलटाय, समटि करसौं कच, पाँखुरपर शिर-वस्त्र खसाय ।
'धनुष' ककर मन नहि बान्है, ई—खोपा बन्हनिहारि मुसुकाय ?

[३६]

छुटे छुटावैं जगत ते, सटकारे सुकुमार ।
मन बाँधत, बेनी बँधे, नील छबीले बार ॥

नाम, सुकोमल, खूजल रहने, केश जगतसौं देछ छोड़ाय ।
'धनुष' येह वेणी बनि बान्है—मनकें, सुन्दर, श्याम सुहाय ॥

[३७]

कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढ़िगो इतो उदोत ।
बंक बिकारी देत ज्यौं, दाम रुपैया होत ॥

मुखपर टेढ़ अलक छुटि पड़ने, आभा ओहने बढ़ल अमूल्य ।
टेढ़ विकारी देने हो जनु—गंडा 'धनुष' रुपैया तुल्य ॥

[३८]

जाहि देखि मन तीरथनि, बिकटनि जाय बलाय ।
जा मृगनैनीके सदा, बेनी परसत पाय ॥

'धनुष' जाहि मृगनयनी-पदकें, वेणी छुबै सबखन आय ।
ओकरा लखि मन विकट तीर्थ सब, घूमक हेतु बलैया जाय ॥

[३९]

नीको लसत ललाट पर, टीको जरित जराय ।
छबिहि बढ़ावत रवि मनो, शशि–मण्डलमें आय ॥

शिरपर जड़ल माँगटीका अछि, 'धनुष' सु-शोभित अतिशय नीक ।
जनु शशि-मण्डल-मध्य आबि रवि, शोभा बढ़बथि शशिक अधीक ॥

[४०]

सबै सुहाये ई लगैं, बसत सुहाये ठाम ।
गोरे मुख बेंदी लसै, अरुन, पीत, सित, स्याम ॥

सुभग ठामपर रहने सब किछु, 'धनुष' भलाभल लाग ललाम ।
युवती-गोर-मुखोपरि शोभै, बिन्दु लाल, पीयर, शित, श्याम ॥

[४१]

कहत सबै बेंदी दिये, आँक दसगुनो होत ।
तिय-लिलार बेंदी दिये, अगनित बढ़त उदोत ॥

'धनुष' बिन्दु देलासौं सब कह, अंकक मूल्य गुणा-दश होछ ।
किन्तु नारि-शिर बिन्दुक देने, अगणित आभा ओकर बढ़ैछ ॥

[४२]

भाल-लाल बेंदी छए, छुटे बार छबि देत ।
गह्यो राहु, अति आह करि, मनु शशि-सूर-समेत ॥

टिकुली लाल भालकें झपने, खूजल केशो शोभा दैछ ।
'धनुष' राहु रवि-सहित चन्द्रकें, जनु अति साहसकऽ पकड़ैछ ॥

[४३]

पायल पाय लगी रहै, लगो अमोलन लाल।
भौंडहरुकी भासि है, बेंदी भामिन-भाल॥

नूपुर पेरहिमे रहैत अछि, यद्यपि अमूल्य लालसौं पूर्ण।
टिकुली अधरखडुक भेलासौं, शोभै 'धनुष' नारि-शिर तूर्ण॥

[४४]

भाल लाल बेंदी, ललन ! आखत रहै बिराजि।
इन्दु-कला कुजमें बसी, मनो राहु-भय-भाजि॥

बाला-शिरक लाल टिकुलीमें, हे हरि! अक्षत यहि विधि भास!
'धनुष' भागि शशि-कला बसल हो, जनु मंगलमें राहुक त्रास॥

[४५]

मिलि चन्दन बेंदी रही, गोरे मुख न लखाय।
ज्यों ज्यों मद-लाली चढ़ै, त्यों-त्यों उघरति जाय॥

चन्दन-विन्दु गोर मुखमें मिलि—रहल 'धनुष' नहि पड़ै लखाय।
जौं-जौं मद-लाली मुखपर चढ़ तौं-तौं ओ प्रत्यक्ष बुझाय।

४६]

तिय-मुख लखि हीरा जरी, बेंदी बढ़ै विनोद।
सुत-सनेह मानो लियो, बिधु पूरन बुध गोद॥

तिय-मुख हीरा-जड़ित विन्दु लखि सब जन अति आनन्दित भेल।
'धनुष' पूर्ण शशि, पुत्र-प्रेमसौं, बुधकें यथा कोरमें लेल॥

[४७]

गड़-रचना, बरुनी, अलक, चितवनि, भौंह, कमान।
आघु बंकाईही बढ़ै, तरुनि, तुरंगम, तान॥

गढ़-रचना, पिपनी, लट, ताकब, हय, युवती, धनु, भृकुटी, तान।
'धनुष' मूल्य बकरा सबहक बढ़, टेढ़-पनाहिसौं कह मतिमान।

[४८]

नासा मोरि, नचाय दृग, करी ककाकी सौंह।
काँटे सी कसकति हिये, वहै कटीली भौंह॥

नाक सिकोड़ि, नचाय नयन-युग, युवती कैल सपथ पित्तीक।
तकर कटाहि भौंहु जनु हियमें, गड़ै काँट-सम 'धनुष' अधीक॥

[४९]

खौरि-पनच, भृकुटी-धनुष, बधिक-समर तजि कानि।
हनत तरुन-मृग, तिलक सर, सुरकि-भाल-भरि तानि॥

खौरि-पनचकें भ्रू-धनुपर दै, बधिक-मदन, स्व-मान तजि, जानि।
'धनुष' युवक-मृग, हनय तिलक-शर, सुरकि-नोकसौं अति शर तानि।

[५०]

रस शृंगार मंजन किये, कंजन-भंजन दैन।
अंजन-रंजन हू बिना, खंजन-गंजन नैन॥

रस-शृँगार-सर-नयन नहैने, तोड़ि देछ कमलक अभिमान।
'धनुष' काजरक होनो रहने, चूर्ण करैछ खंजनक शान॥

[५१]

खेलन सिखये अलि भले, चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग, नागर नरनि-सिकार॥

करब सिखाओल सखि ! भल रूपें, 'धनुष' सुदक्ष शिकारी मार।
कानन-चारी, नयन-मृगाकें, चतुर मनुष्यादिकक शिकार॥

[५२]

अरतें टरत न वर परे, दई मरक मनु मैन।
होड़ा-होड़ी बाढ़ि चले, चित, चतुराई, नैन॥

चित्त, चतुरता, नयन परस्पर, बढ़इछ प्रतिद्वन्द्विता देखाय।
'धनुष' न हटलौं हटै, पकड़ बल, मदनक जनु प्रोत्साहन पाय॥

[५३]

सायक-सम मायक-नयन, रँगे त्रिबिध रँग गात ।
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ॥

मायावी दृग बाण-सदृश अछि, 'धनुष' तीनि रँग रँगल शरीर ।
दृग लखि माछ दुखित जल प्रविशय, कमल लजाइत ह्वैछ अधीर ॥

[५४]

जोग-जुगुति सिखिये सबै, मनो महामुनि मैन ।
चाहत पिय-अद्वैतता, कानन सेवत नैन ॥

योगक युक्ति समस्त सिखाओल, मानू 'धनुष' महामुनि मैन ।
चाहै प्रीतमसौं अभिन्नता, तैं हित कानन सेवै नैन ।

[५५]

खर जीते सर मैनके, ऐसे देखे मैं न ।
हरिनीके नैनानते, हरि ! नीके ये नैन ॥

काम-शरहु के बरबस जितलक, हम नहि एहन देखलहुँ नैन ।
हरिनिक नयनहु सौं हरि ! निक अछि, ई दृग 'धनुष' साँच ई बैन ॥

[५६]

संगति-दोष लगै सबै, कहे जु साँचो बैन ।
कुटिल बंक भ्रू-संगते, भये कुटिल-गति नैन ॥

'दोष लगैछ संगतिक सबकें'-जाइछ कहल साँच ई बैन ।
तिरछी, टेढ़ भँहुक संगतिसौं, 'धनुष' टेढ़-गति-युत भेल नैन ॥

[५७]

हगन लगत, बेधत हिये, बिकल करत अँग आन ।
ये तेरे सब ते बिषम, ईछन तीछन बान ॥

दृगमें लागि, 'धनुष' बेधै हिय, आन अंग सबकें दुख दैछ ।
ई तोहर दृग सखि ! तिख शरसौं, महा भयङ्कर बूझि पड़ैछ ।

[५८]

झूठे जानि न संग्रहै, मन, मुह निकसे बैन ।
याही ते मानो किये, बातनको बिधि सैन ॥

मुखसौं बाहर भेल बचनकें, झूठ जानि मन ग्रहण करै न ।
'धनुष' बनाओल यही हेतु जनु—गप करबाले बिधि दृग-सैन ॥

[५९]

फिरि-फिर दौरत देखियत, निचले नेकु रहैं न ।
ये कजरारे कौन पै, करत कजाकी नैन ?

पुनि-पुनि दौड़लि देखि पड़ अछि, कनियों निश्चल 'धनुष' रहै न ।
ककरापर ई घात करै अछि, तोहर काजर-युत युग नैन ?

[६०

खरी भीरहू भेदि कै, कितहू ह्वै उत जाय ।
फिरे डीठि-जुरि-डीठसौं, सबकी डीठि बचाय ॥

भारी भीड़हु कें भेदनकै, 'धनुष' ओतै कोनहुँ दै जाय ।
घुरै आँखि-सौं-आँखि मीलिकै, झट-पट सबहक आँखि बचाय ॥

[६१]

सबही तन समुहाति छिन, चलति सबनि दै पीठि ।
वाही तन ठहराति यह किबिलनवी—लौं डीठि ।

'धनुष'सबक तनसौं मिलि छण भरि, विमुख सबहिसौं भै चलिदेछ ।
मन्त्र-कटोरी-सम तुअ दृग जा, झट प्रीतम-तनपर थिर ह्वैछ ॥

[६२]

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात ।
भरे भौनमें करत है, नैननही सौं बात ॥

कहै, नटै, रीझै, खीझ पुनि, मिलै, खिलै ओ जाय लजाय ।
भरल भवनमें 'धनुष' करै अछि, दृग-दृगसौं गप दुहु हर्षाय ॥

[६३]

सब अँग करि राखी सुघर, नायक-नेह सिखाय ।

रस-जुत लेत अनन्त गति, पुतरी-पातुरराय ॥

'धनुष' बनाय योग्य सब विधिसौं, प्रेम-गुरु नट-कला सिखाय ।
सरस, विविध देखवैछ नृत्य-गति, पुतरी-वेश्या मन हर्षाय ॥

[६४]

कंजनयनि-मंजन किये, बैठी ब्योरति बार ।

कच अँगुरिन-बिच डीठि दै, निरखति नंदकुमार ।

'धनुष' कमलनयनी नहायकै, बैसलि सुखवै अछि निज केश ।
कच-बिच आँगुर, ताबिच दृग दै, देखै हरिकें लाय विशेष ॥

[६५]

डीठि-बरत बाँधी अटनि, चढ़ि धावत न डरात ।

इत-उत ते चित दुहुनके, नट-लौं आवत-जात ॥

दृग-डोरी दुहु बन्हल अटापर, तापर चढ़ि दौड़ै न डराय ।
नट-सम 'धनुष' दुहुक मन निर्भय, यमहर-ओमहर आबै जाय ॥

[६६]

जुरे दुहुनके दृग झमकि, रुके न झीने चीर ।

हलकी फौज हरौल ज्यौं, परत गोलपर भीर ॥

ललकि लड़ल दृग दुहुक 'धनुष' जुटि, रुकल न छल अति मेही चीर ।
जनु लघु-दल शैन्याग्र-भागमें, रहने बीचहिमें पड़ भीर ॥

[६७]

लीनेहू साहस सहस, कीने यतन हजार ।

लोयन-लोयन सिंधु-तन, पैरि न पावत पार ॥

'धनुष' सहस्र साहसो रखने, कैनहु पर दृढ़ यत्न हजार ।
तन-सौन्दर्य-सिन्धुकें ई दृग, हेलि न पाबि सकै अछि पार ॥

[६८]

पहुँचति डटि रन-सुभट-लौं, रोकि सकै सब नाहि ।

लाखनहूकी भीरमें, आँखि उतै चलि जाहि ॥

'धनुष' पहुँच डाँट, समर-सूर-सम, सकै न ओकरा क्यो जन रोकि ।
लाखो नरक घोलमें निर्भय, आँखि ओतै चल जाइछ झौंकि ॥

[६९]

गड़ी कुटुंमकी भीरमें, रही बैठि दै पीठ ।

तऊ पलक परिजात उत, सलल, हँसौं ही दीठ ॥

घेरलि परिवारक समूहमें, बैसलि अछि दै जैयो पीठ ।
'धनुष' पलक पड़ तैयो पति-दिशि, सलज हास्य-युत युवती-डीठ ॥

[७०]

भौंह उचै, आँचरु उलटि, मौरि मोरि, मुहँ मोरि ।

नीठि-नीठि भीतर गई, डीठि-डीठिसौं जोरि ॥

भौंहु तानि, आँचर उनटाके, शिर झुकाय, झट स्व-मुख घुराय ।
नहुँ-नहुँ सौं नायिका गेलि गृह, 'धनुष' आँखि-सौं-आँखि मिलाय ॥

[७१]

ऐंचत-सी चितवन चितै, भई ओट अलसाय ।

फिर उझकनिको मृगनयनि, दृगनि लगनियाँ लाय ।

चित्ताकर्षक दृगसौं लखिकै, गेली 'धनुष' औढ़ अलसाय ।
पुनि-पुनि उझकनि-बानि आँखिमें, मृगनयनी मोहि देल लगाय ॥

[७२]

सटपटाति-सी ससिमुखी, मुख घूँघट-पट ढाँकि ।

पावक-झर-सी झमकि कै, गई झरोखे झाँकि ॥

'धनुष' डेराइलि-सनि शशिवदनी, निज मुख घोघक पटसौं झाँपि ।
अधरा-सम चञ्चलटा-युत भो, झाँखि गेलि खिड़कोस ँ काँपि ॥

[७३]

लागत कुटिल कटाच्छ-सर, क्यों न होहिं बेहाल ?
कढ़त जु हियो दुसार करि, तऊ रहत नटसाल ॥

टेढ़ कटाक्ष-शरक लगलासौं, हैत किये नहि व्याकुल लोक ?
'धनुष' पारकें हिय, बारहु भे, तैयो नष्ट-शल्य-सम शोक ॥

[७४]

नैन-तुरंगम, अलक-छवि-छरी लगी जिहिं आय ।
तिहि चढ़ि मन चञ्चल भयो, मति दीनी बिसराय ॥

'धनुष' जाहि दृग-हयकें केशक, छवि-चाबुक लागल अछि आय ।
मेल ताहिपर चढ़ि मन चञ्चल, और देल सब सुधि बिसराय ॥

[७५]

नीची-पै-नीची निपट, डीठि कुही-लौं दौरि ।
उठि ऊँचे, नीची दियो, मन-कुलंग झकझोरि ॥

नीच-हिं-नीचा सब तरहँ दृग, 'धनुष' कुही-पक्षी-सम धाबि ।
पुनि चढ़ि ऊपर, मन-फललकें, झिकझोरति नीचा देल दाबि ॥

[७६]

तिय कित कमनैती पढ़ी ? बिन-जिह भौंह कमान ।
चल-चित बेझो चुकति नहिं, बंक बिलोकनि-बान ॥

'धनुष' पढ़ल शर-विद्या कहँ तिय ? बिनु डोरिक भृकुटि-धनु-खींच
चञ्चल चितक टेढ़ दृग-शरसौं, लक्ष्य-बेधमें करै न बीच ॥

[७७]

दूरे खरे समीपको, मानि लेत मन-मोद ।
होत दुगनके दृग-मही, बतरस, हँसी, बिनोद ॥

दूर-दूर ठाढ़ो रहलापर, निकटक मनमें माने मोद
आँखि-आँखिसौं कुहुकें होइछ, 'धनुष' हास्य, गप, शुत बिनोद ॥

[७८]

छुटै न लाज, न लालचौ, प्यौ लखि, नैहर-गेह ।
सटपटात लोचन खरे, भरे सँकोच, सनेह ॥

प्रीतमकें नैहर-घरमें लखि, देखक छुटय न लोभ, संकोच ।
प्रेम, लाजसौं पूर्ण नारि-दृग, अति व्याकुल हो 'धनुष' स-सोच ॥

[७९]

करै चाहसौं चुटकि कै, खरे उड़ौहैं मैन ।
लाज नवाये तरफरत, करत खुँद-सी नैन ॥

'धनुष' चाह-चाबुक हनि दृगकें, अति उड़ौतके देलक काम ।
लाज-लगामक रोकें दृग-हय, धड़फड़ायकें जमै ललाम ॥

[८०]

नावक-सर-से लाय, कै—तिलक तरुनि, इत ताकि ।
पावक-झर-सी झमकि कै, गई झरोखे झाँकि ॥

शर-अचूक-सम, तिलक भालकै, 'धनुष' नारि हमरा दिशि ताकि
अग्नि-शिखा-सम चञ्चलता-युत, खिड़कीसौं चलि देलक झाँकि ॥

[८१]

अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान ?
वह चितवनि और कछू, जिहिं बस होत सुजान ॥

तरुणीगणक तीव्र दृग सब की, 'धनुष' छैछ नहि एक समान ?
सरस कटाक्ष किन्तु ओ आने—छैछ, जाहि बस होथि सुजान ॥

[८२]

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट-पट झीन ।
मानहु सुरसरिता—बिमल—जल, उछरत जुग मीन ॥

मेही घोघक वस्त्र-बीचमें, नारिक चञ्चल दृग चमकैछ ।
सुरसरि-स्वच्छ-सलिल-बिचमें जनु-मुदित माछ युग 'धनुष' कुदैछ ॥

[८३]

फूले फरकत लै फरी–पल, कटाक्ष–करवार ।
करत, बचावत विय, नयन–पायक, घाय हजार ॥

लै पल-ढाल, कटाक्ष–असि दुहुक, नयन-सिपाही दाव देखाय ।
मुदित प्रहार सहओ कर पुनि, 'धनुष' सहजा लैछ बचाय ॥

[८४]

जदपि चवायनि चीकनी, चलति चहुँ दिसि सैन ।
तऊ न छाड़ति दुहुनके, हँसी रसीले नैन ॥

यद्यपि इसारा चारू दिशिसौं, निन्दा-पूर्ण अनेक चलैछ ।
'धनुष' दुहुक रस-भरल आँखि ओ, तदपि हँसी नहि त्याग करैछ ॥

[८५]

जटित नीलमनि जगमगति, सींक सुहाई नाक ।
मनो अली चम्पक-कली–बसि–रस लेत निसांक ॥

जड़ल नीलमणिसौं छक जगमग, सुन्दर नाकक शोभ करैछ ।
यथा भ्रमर चम्पाक कलीपर, 'धनुष' दैख निर्भय रस लैछ ॥

[८६]

बेधक अनियारे नयन, बेधत कर न निषेध ।
बरबस बेधत मो हियो, तुअ नासाको बेध ॥

छेद करैछ तीव्र दृग यदि हिय, छेदै दुहुक, न करइ निषेध ।
बलसौं छेदै हमरा हियकें, 'धनुष' तोहर ई नाकक बेध ॥

[८७]

यदपि लौंग ललितौ तऊ–तू न पहिरि इक आंक ।
सदा संक बढ़िये रहै, रहै चढ़ी-सी नाक ॥

यद्यपि लौंग लगैछ ललित अति, तदपि न अहँ पहिरु ध्रुव मानि ।
'धनुष' चढ़ल-सन देखि नाक नित, बढ़ै क्रोध-शंका, हो हानि ॥

[८८]

बेसरि–मोती–दुति–झलक, परी ओठ पर आय ।
चूनो होय न, चतुर तिय ! क्यों पट पोंछो जाय ?

बुलाकीक मोती–द्युति-आभा, पड़ल ओठपर अहँके आय ।
नहि थिक 'धनुष' चून ई चतुरे ! पटसौं कोना पोछल जाय ?

[८९]

इहि द्वैही मोती सुगथ, तू नथ ! गरबि निसांक ।
जिहि पहिरे जग-दृग ग्रसति, लसति हँसति-सी नाक ॥

यहि दुइये मोतिक पूँजीपर, नथ ! कर गर्व 'धनुष' भय छोड़ि ।
जाहि पहिरि लस नाक हँसै-सन, जग-दृगकें पकड़ै बरजोड़ि ॥

[९०]

बेसरि-मोती ! धन्य !! तू, को बूझै कुल-जाति ?
पीबो कर तिय-अधरको–रस, निधरक दिन-राति ॥

नथ-मोती ! तौं 'धनुष' धन्य छह ! के बुझ कर्मतक कुल-जाति ?
नारि-अधर-रसकें निर्भय भै, पीयल करइ, मुदित दिन-राति ॥

[९१]

बरन, बास, सुकुमारता, सब बिधि रही समाय ।
पँखुरी लगी गुलाबकी, गाल न जानी जाय ॥

'धनुष' गुलाबक पँखुरी, लागल-गाल उपर, चीन्हल नहि जाय ।
रंग, सुगन्ध, कोमलता ओकर, सब विधि मिलल गालमें आय ॥

[९२]

लसत सेत सारी ढक्यो, तरल तरौना कान ।
परयो मनो सुरसरि-सलिल, रबि-प्रतिबिम्ब बिहान ॥

ऊजर साड़ीसौं झाँपल भल, चञ्चल तड़की शोभे कान ।
'धनुष' यथा गंगाजलमें पड़, प्रातक सूर्य-बिम्ब अम्लान ॥

[९३]

स-दुति दुराये दुरति नहिं, प्रगट करति रति-रूप ।
छुटे पीक औरै उठी, लाली ओठ अनूप ॥

सु-द्युति नुकौने नहि नुकाय, बढ़—सुन्दरता औरो चमकैछ ।
'धनुष' पीक छुटलोपर लाली-अधरक, अनुपम और उमेंछ ॥

[९४]

कुच-गिरि-चढ़ि अति थकित ह्वै, चली डीठि मुख-चाड़ ।
फिर न टरी, परियै रही, परी चिबुककी गाड़ ॥

मुख देखक इच्छासौं दृग-युग कुच-गिरि चढ़इत गेल थकाय ।
'धनुष' खसल दृग चिबुक-खाधिमें, हटल न, पड़ल रहल औनाय ॥

[९५]

ललित स्याम—लीला ललन ! चढ़ी चिबुक-छवि दून ।
मधु छाक्यो, मधुकर परयौ, मनो गुलाब-प्रसून ॥

'धनुष' ललित खोधाक टोपसौं, बढ़ल चिबुक-छवि द्विगुणित श्याम !
यथा मधुप मधु पीबि पड़ल अछि, फूल गुलाबक उपर ललाम ॥

[९६]

डारे ठोड़ी-गाड़ गहि, नैन-बटोही मारि ।
चिलक—चौंधिमें रूप—ठग, हाँसी-फाँसी डारि ॥

चमक-चोन्हिमें 'धनुष' रूप-ठग, हाँसक फाँसी सपदि लगाय
नयन-पथिककें पकड़ि, मारि पुनि, चिबुक-खाधिमें देल खसाय ॥

[९७]

ता लखि मोमन जो लह्यो, सो गति कही न जाति ।
ठोड़ी-गाड़ गड्यौ, तऊ—उड्यौ रहत दिन-राति ॥

तोरा देखि, हमर मन जे गति—डोलक अछि, से कहल न जाय
'धनुष' यद्यपि रह चिबुक-खाधिमें, तदपि राति-दिन उड़ति लखाय

[९८]

'लोने मुख डीठि न लगै'—यों कहि दीनो ईठि ।
दूनी ह्वै लागन लगी, दिये डिठौना डीठ ॥

'सुन्दर मुखपर दृग न लगै'—कहि, सखी डिठौना देल लगाय ।
'धनुष' द्विगुण भै लागै लागल, सब लोकक दृग औरो आय ॥

[९९]

पिय तियसौं हँसिकै कह्यो, लखे डिठौना दीन ।
चन्द्रमुखी ! मुख चन्द्र ते, भलो चन्द्र—सम कीन ॥

'धनुष' डिठौना लागल लखि, हँसि, पुछल प्रियासौं प्रीतम बात ।
चन्द्रवदनि ! निज चन्द्र-वदनसौं, चन्द्रहुकें केलहु अछि मात ॥

[१००]

गड़े बड़े छबि-छाकु छकि, छिगुनी—छोर छुटैं न ।
रहे सुरँग रँग रँगि वही, नहँदी महँदी नैन ॥

रूप-मद्य-पिबि खूब गड़ल अछि, कनगुड़ियाक अन्तमें नेन ।
'धनुष' ओही नह देहु मेंहदा, लाल-रंगमें रँगल छुटैं न ॥

दोसर शतक

[१०१]

सूर उदित हु मुदित मन, मुख—सुखमाकी ओर ।
चितै रहत चहुँ ओर ते, निश्चल चखनि चकोर ॥

सूर्योदय, भैनहु प्रसन्न मन, युवती-मुख-सुन्दरता-ओर ।
चारु दिशिसौं 'धनुष' तकै अछि, अचल नयनसौं सकल चकोर ॥

[१०२]

पत्राही तिथि पाइयत, वा घरके चहुँ पास।
नित–प्रति पून्योहो रहत, आनन–ओप–उजास॥

पतड़हिसौं तिथि–निश्चय, ओकरा–घरक चतुर्दिशि बूझि पड़ैछ।
युवती-मुख-आभा-प्रकाशसौं, 'धनुष' सदा पूर्णिमे रहैछ॥

[१०३]

नेकु हँसौंही बानि तजि, लख्यौ परत मुख नीठि।
चौंका-चमकनि-चौंधमें, परत चौंध–सी डीठि॥

'धनुष' रखु तनु हँसक बानि अहँ, कठिनहि तुअ मुख देखि पड़ैछ।
दाँतक चमकक चकचोन्हीमें, दृगमें चकचोन्ही-सम हैछ॥

[१०४]

चलन न पावत निगम-मग, जग उपजी अति त्रास।
कुच–उतङ्ग–गिरिवर गह्यौ, मीना-मैन मवास॥

क्यो न वेद-पथ चलै पथे अछि, जगमें उपजि गेल अति त्रास।
'धनुष' ऊच कुच–गिरिपर कैलक, मनसिज-डाकू निज आवास॥

[१०५]

ज्यौं-ज्यौं जोवन जेठ दिन, कुच-मिति अति अधिकाति।
त्यौं–त्यौं छिन-छिन कटि-छपा, छीन परति-सी जाति॥

जौं-जौं यौवन-जेठ मासमें, कुच–दिनमान बहुत बढ़ि जाय।
तौं–तौं कटि–निशि छण छण छोइत, छीण नित्य-प्रति 'धनुष' लखाय॥

[१०६]

लगी अनलगी-सी जु विधि, करी खरी कटि छीन।
किये मनो वाही कसरि, कुच, नितम्ब अति पीन॥

विधि कैलनि कटिकें अति पातर, लागो 'धनुष' फराक लखाय।
देल देह त्रुटि पूर्ण करक–हित, कुच, नितम्ब अति पुष्ट बनाय॥

[१०७]

जंघ जुगल लोचन निरे, करे मनो विधि-मैन।
केलि-तरुन दुख देनको, केलि तरुन सुख दैन॥

युगल-जाँघकेँ यथा मदन-विधि, देल सुभगता-रूप बनाय।
केरा–तरुकेँ 'धनुष' दैछ दुख तरुणहिँ रति–सुख अधिक बढ़ाय॥

[१०८]

रह्यौ ढीठ ढारस गहैं, ससिहर गयो न सूर।
मुर्यो न मन, मुरवान चुभि, भौ चूरन चपि चूर॥

रहल ढीठ-पनसौं साहस कै, डरल, घुरल नहि, जनु अति शूर।
'धनुष' यदपि मन सोकवामें सटि, पैरीसौं पिचि भेगेल चूर॥

[१०९]

पाय महावर देनको, नाइन बैठी आय।
फिरि-फिरि जानि महावरी, एँड़ी मीजत जाय॥

पैर-मध्य आरत देयाले, नौआइनि बैसलि लग आबि।
'धनुष' जानि पहिलुक आरतसे, पुनि-पुनि एँड़ी माजे दाबि॥

[११०]

कौहर-सी एँड़ीनकी, लाली निरखि सुभाय।
पाय महावर देनको, आपु भई बे-पाय॥

महँकारीक फलक-सन एँड़ी, 'धनुष' देखि स्वाभाविक लाल।
पैर–मध्य आरत लगबै के ? नाइनि अपनहि भेलि बेहाल॥

[१११]

किय हायल चित-चाय लगि, बजि पायल तुव पाय।
पुनि सुनि-सुनि मुख-मधुर-धुनि, क्यों न लाल ललचाय ?

तुअ पद-नेडर बाजि घाय कर, 'धनुष' दैछ हिय चाह लगाय।
पुनि सुनि-सुनि मुख-मधुर-वचन तुअ, कृष्ण किये नहि रह ललचाय ?

[११२]

सोहत अँगुठा पायके, अनवट जरो जराय ।
जीत्यौ तरिवन-दुति सु-ढरि, परयो तरनि मनु-पाय ॥

पद-आँगुड़क जड़ल नग-बिछिया, 'धनुष' रहल अति शोभा पाय ।
जनु तड़की-द्युतिसौं पराप्त भै, रवि खसला तरुणी-पद आय ॥

[११३]

पग-पग मग अगमन परति, चरन-अरुन-दुति-झूलि ।
ठौर-ठौर लखियत उठे, दुपहरिया-से फूलि ॥

पथमें पद-पदपर आँगुड़ दिशि, चरण-अरुण-द्युति खसति लखाय ।
'धनुष' देखि पड़ ठाम-ठाम जनु-दुपहरियाक सु-फूल फुलाय ॥

[११४]

दुरत न कुच-बिच कंचुकी, चुपरी सारी सेत ।
कवि-अंकनके अर्थ-लौं, प्रगट दिखाई देत ॥

सटल-श्वेत-साड़ा-आँगी-बिच कुच, झाँपल नहि बूझि पड़ैछ ।
कवि-शब्दार्थ-समान 'धनुष' से, प्रगट देखि पड़, भ्रम नहि हैछ ॥

[११५]

भई जु तन-छवि बसन-मिलि, बरनि सकै सु न बैन ।
अंग-ओप आँगी दुरी, आँगी अंग दुरै न ॥

पटमें मिल जे भेल देह-द्युति, 'धनुष' बैन नहि बरणि सकैछ ।
अंग-कान्तिसौं छपल आँगिये, आँगीसौं नहि अंग झपैछ ॥

[११६]

भूषन पहिरि न कनकके, कहि आवत इहि हेत ।
दरपनके-से मोरचे, देह दिखाई देत ॥

'धनुष' 'पहिर नहि सोनक गहना'-अही हेतु ई कहक पड़ैछ ।
ऐनामें स्याही लागल-सन, तनमें गहना लखित हैछ ॥

[११७]

मानहु बिधि तन-अच्छ छबि स्वच्छ राखिबे काज ।
दृग-पग पोंछनको किये, भूषन पायन्दाज ॥

जनु ब्रह्मा तन-सुभग-कान्तिकें 'धनुष' स्वच्छ अति राखक काज ।
दृग-पद पोंछक हेतु बनाबल, गहनाकें पदपोंछना आज ॥

[११८]

सोनजुही-सी जगमगी, अँग-अँग जोबन-जोति ।
सु-रँग कुसुम्भी चूनरी, दुरँग देह-द्युति होति ॥

सोनजुही-सम अंग-अंगमें, जगमग यौवन-ज्योति करैछ ।
'धनुष' लाल कुसुमी साड़ीसौं, तन-द्युति नारंगी-रंग हैछ ॥

[११९]

छुप्यो छबीलो मुख लसै, नीले अंचल-चीर ।
मनो कलानिधि झलमलै, कालिन्दी के नीर ॥

'धनुष' नील आँचरमें झाँपल, तिय-सुन्दर-मुख शोभे नीक ।
जनु शशि जमुना-जलक कातमें, झलकि रहल हो भै निर्भीक ॥

[१२०]

लसै मुरासा तिय-स्रवन, यों मुकुतन-दुति-पाय ।
मानो परस कपोलके, रहे सेद-कन छाय ॥

मोतिक कान्ति पायिके तड़की, तिय-श्रुतिमें यहि विधि शोभैछ ।
गालक परसहि 'धनुष' ताहिपर, यथा पसेना-बिन्दु रहैछ ॥

[१२१]

सहज सेत पचतोरिया, पहिरे अति छबि होति ।
जल-चादरके दीप-लौं, जगमगाति तन-ज्योति ॥

सहज श्वेत झूना रेसम तिय, 'धनुष' पहिरने अति छवि हैछ ।
जल-चद्दरि-दीपक-सम सुन्दर, जगमग तिय-तन-कान्ति करैछ ॥

[१२२]

सालति है नटसाल-सी, क्यौं हू निकसति नाहिं।
मनमथ-नेजा-नोक-सी, खुभी, खुभी मन माहिं॥

काम-कटार-नोक-सम कानक—खुटी गड़ल अछि, मनमे आय।
नष्ट-शल्य-सम पीड़ा दै अछि, 'धनुष' न कोनहु विधि बहराय।

[१२३]

अजौं तरयोनाही रह्यौ, श्रुति सेवत इक अंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतनके संग॥

एकमात्र कानक सेवाके, तड़की–तड़की रहि गेल।
मुक्तादिक संगतिसौं नथकें, 'धनुष' प्राप्त नाकक संग भेल॥

[१२४]

(सो०) मंगल-बिन्दु-सुरंग, मुख-ससि, केसर-आड़-गुरु।
इक नारी लहि संग, रस-मय किय लोचन-जगत॥

लाल–बिन्दु-मंगल, मुख–शशि औ, पीयर–ठाढ़–तिलक-गुरु भेल।
'धनुष' एक नारिक संगतिसौं, दृग–जगकें रसमयकै देल।

[१२५]

गोरी छिगुनी, अरुन नख, छला स्याम छवि देय।
लहत मुकुति-रति छिनक, ये—नैन-त्रिबेनी सेय॥

'धनुष' लाल नख, गोर कनिगुठा, कारी औंठी शोभा देछ।
यहि त्रिवेणी-सेवनक दृग, प्रीति—मुक्ति छण-मध्य पबैछ।

[१२६]

तरिवन-कनक, कपोल-दुति, बिच-बिचही जु बिकान।
लाल-लाल चमकत चुनी, चौका चौंध-समान॥

तड़की-सोन, कपोल-कान्तिमें, बिच-हिँ-बीचमें गेल बिकाय।
लाल—लाल मणि-कण दाँतक सँग, सन मे चमकति 'धनुष' लखाय

[१२७]

सारी डारी नीलकी, ओट अचूक चुकै न।
मो मन-मृग करबर गहै, अहै अहेरी नैन॥

नील-नुआकें टाटक ओढ़हिं, लक्ष अचूक करैछ, चुकै न।
हमरा मन-मृगकें कर-बलसौं, गहलक 'धनुष' शिकारी नैन॥

[१२८]

तन-भूषन, अंजन-दृगनि, पगन-महावर-रंग।
नहिं शोभाको साज ये, कहिबेही को अंग॥

तनमें गहना, दृगमें काजर, पैर-मध्य आरतक सु-रंग।
यहि सबसौं शोभा न बढ़ै, ई—'धनुष' नाम लै शोभा-अंग॥

[१२९]

पाय तरुनि-कुच-उच्च-पद, चिरमि ठग्यो सब गाँव।
छुटे ठौर, रहि है वहै, जु है मोल, छवि, नाँव॥

पाबि तरुणि—कुच-उच्च-स्थलकें, 'धनुष' ठकल गुंजा भरि गाम।
तहँसौं हटितहिं, जैत बैह रहि, जे छल पूर्व मूल्य, छवि, नाम।

[१३०]

उर मानिककी उरबसी, डटत, घटत दृग-दाग।
झलकत बाहिर भरि मनो, तिय-हियको अनुराग॥

'धनुष' देखि हियपर मणि-हैकल, सहसा आँखिक दाह घटैछ।
नारिक हृदय प्रेम भै बाहर, मानू अति सुन्दर झलकैछ॥

[१३१]

जरी कोर, गोरे-बदन, बढ़ी खरी छवि देख!
लसति मनो बिजुरी किये, सारद—शशि परिवेख॥

साड़ी-कनक-किनारी अति बढ़ि, गोर बदनपर शोभै रेख!
घेरि शरद—शशिकें धैलक जनु 'धनुष' चहुँदिशि बिजुरी-रेख॥

[१३२]

देखत सोन जुही फिरति, सोनजुही-से अंग ।
दुति-लपटन-पट-सेतहू, करत बनौटी रंग ॥

सोनजुही-सम तनवाली तिय सोनजुही-वन लखति फिरैछ ।
'धनुष' स्वेत पट, तन-द्युति-लपटैं, रंग, करासी प्रगट करैछ ॥

[१३३]

तीज-परब सौतिन सजे, भूषन-बसन सरीर ।
सबै मरगजे मुँह करी, वहै मरगजे चीर ॥

हरिताली-दिन पट—भूषणसौं-लकलक, सौतिन सबहिं शरीर ।
किन्तु सबक मुख मलिन कैल तिय, 'धनुष' पहिरि रति-मर्दित-चीर ॥

[१३४]

पचरँग रँग-बेंदी बनी, उठी जागि मुख-जोति ।
पहिरे चीर चुनौटिया, चटक चौगुनी होति ॥

पचरंग टिकुली नगक बनल अछि, सटितहिं मुखक ज्योति चमकैछ ।
सबरंग-साड़ी 'धनुष' पहिरने, तिय-मुख-चमक चतुर्गुण हैछ ॥

[१३५]

बेँदी-भाल, तमोल-मुख, सीस—सिलसिले बार ।
दृग आँजे राजै खरी, यही सहज सिंगार ॥

मुखमें पान, भालपर टिकुली, दृग काजर, शिर साजल, केश ।
'धनुष' अहा शृंगार सहजहिँ, तरुणी शोभित अछि अति वेश ॥

[१३६]

हौं रीझी, लखि रीझि हौ, छबिहि छबीले लाल !
सोनजुही-सी होति दुति, मिलित मालती-माल ॥

हम रिझलहुँ युवतीक देखि छवि 'धनुष' तहूँ रिझबह लखि श्याम !
तनसौं मिलि मालती-माल-द्युति, सोनजुही—सम हैछ ललाम ॥

[१३७]

झीने पटमें झिलमिली, झलकति ओप अपार ।
सुरतरुकी मनु सिन्धुमें, लसत सपल्लव डार ॥

पातर पटमें पीपर पातक 'धनुष' अपार कान्ति झलकैछ ।
कल्पतरुक पल्लव-युत शाखा, जनु समुद्रमें शोभित हैछ ॥

[१३८]

फिरि-फिरि चित उतही रहत, टुटी लाजकी लाव ।
अंग-अंग-छबि —झौंरमें, भयो भौंरकी नाव ॥

पुनि-पुनि ओतहि चित्त चल जाइछ, लाज-लहासो से टुटिगेल ।
अंग-अंग शोभा—समूहमें, भँभरक नाव 'धनुष' मन भेल ॥

[१३९]

केसरि कै सरि क्यों सके ? चम्पक कितक अनूप ?
गात-रूप लखि जात दुरि, जात-रूप-को-रूप ॥

केसरि सकइछ समता नहिकैं, चम्पा सेहो कतेक अनूप ॥
तरुणी-तन-सौंदर्य-देखिकैं 'धनुष' गेल छपि सोनक रूप ?

[१४०]

जाहि लखे लोयन लगे, कौन जुवतिकी जोति ?
जाके तनकी छाँह-ढिग, जोन्ह छाँह-सी होति ॥

जकरा तनक छाँह लग चन्द्रक—ज्योति 'धनुष' छाया—सम लाग ।
कोन कामिनिक, कन्ति लाग दृग ? ओकरा देखि सहित अनुराग ॥

[१४१]

कहि लहि कौन सके दुरी, सोनजायमें जाय ?
तनकी सहज सुबासना, देती जो न बताय ॥

सोनजुही-वन जाय नुकायलि, कहु ओकरा के पावि सकैत ?
तिय-तन-स्वाभाविक-सुगन्ध यदि, 'धनुष' देखाय सपदि नहि दैत ॥

[१४२]

हरि-छबि-जल जबतें परे, तबतें छिन बिछुरै न।
भरत, ढरत, बूड़त, तिरत, रहट-घरी-लौं नैन॥

हरि-छवि-जलमे पड़ल जखनसौं, तखनहिसौं छण भरि न तजइछ।
रहट-घैल-सम 'धनुष' हमर दृग, भरै, ढरै, डुबै, हेलैछ॥

[१४३]

रहि न सक्यौ, कस करि रह्यो, बस करि लीन्हो मार।
भेद दुसार कियो हियो, तन-दुति-भेदोसार॥

मनकें रोकल, रोकि न सकलहुँ, 'धनुष' स्व-वसकें लेलक मार।
तिय-तन-शोभा बरमासौं कै, छेद कैल हिय आरोपार॥

[१४४]

पहिरतही गोरे गरे, यौं दौरी दुति, लाल!
मनो परसि पुलकित भई मौलसिरीकी माल॥

गोर-ग्रीवामें 'धनुष' पहिरितहि, शोभा बढ़ल-देल नँदलाल।
मैलि परसि पुलकित अति कामिनि, अहिँक देल मकुलश्री-माल॥

[१४५]

कहाँ कुसुम, कहँ कौमुदी, कितक आरसी-जोति?
जाकी उजराइ लखे, आँख ऊजरी होति॥

'धनुष' चन्द्रिका, सुमन, दर्पणक, ज्योतिक धवलताक की दाम!
जकर धवलता देखि धवल हो, विस्फारित भै जग-दृग श्याम॥

[१४६]

कंचन-तन-धन-बरन बर, रह्यौ रंग-मिलि-रंग।
जानी जात सुबासही केसर लाई अंग॥

नायिकाक तन-श्रेष्ठ-सोनहुला—रंगमें केसरि-रंग मिलि गेल।
'धनुष' देहमें लागल केसरि, निज सुगन्धसौं परिचित भेल॥

[१४७]

अंग-अंग नग जगमगत, दीप-सिखा-सी देह।
दिया बढ़ाये हू रहै, बड़ो उजेरो गेह॥

दीप-शिखा-सम अंग-अंगमें, भूषण-युत नग करै प्रकाश।
'धनुष' मिझौनहु दीप, रहै अछि, पूर्ण प्रकाश-युक्त आवास॥

[१४८]

हैं कपूर-मनिमय रही, मिलि तन-दुति मुकुतालि।
छिन-छिन खरी बिचच्छनौ, लखति छुवाय तिनु आलि॥

तन-द्युतिमें मिलि मुक्ता-माला, मणि-कपूर-माला-सम भेल।
'धनुष' चतुर अति सखियो तृणसौं, हार छुआकें लखइत गेल॥

[१४९]

लरी लसति गोरे गरे, धसति पानकी पीक।
मनो गुलूबँद-लालकी, लाल! लाल दुति-लीक॥

युवती-ग्रीवमें जाइत पानक, 'धनुष' पीक अति नीक लगैछ।
लाल! लाल-रेखा-द्युति मानू, लाल मणिक माला-सम हैछ॥

[१५०]

बाल छबीली तियनमें, बैठी आपु छिपाय।
अरगटकी फानूस-सी, परगट परै लखाय॥

'धनुष' सुभग तरुणी तियगणमें, जा बैसलि से स्वयं नुकाय।
शीशा-बिच बरैत दीपक-सम, दूरहिसौं प्रत्यक्ष लखाय॥

[१५१]

डीठि न परत समान दुति, कनक कनक-से गात।
भूषन कर करकस लगत, परस पिछाने जात॥

सम द्युति-कारण, कनक-अंगमें, कनकाभूषण लखि न पड़ैछ।
'धनुष' कठोर हाथमें लगने, तेखन भूषण शोधित हैछ।

[१५२]

करत मलिन आछी छबिहि, हरत जु सहज विकास ।
अंगराग अंगन लग्यो, ज्यौं आरसी-उसास ॥

मलिन करैछ सुभग शोभहुँकें, हर स्वाभाविक 'धनुष' विकाश ।
अंगराग तन-लागल बुझिपड़, ऐनापर जनु भाफल श्वास ।

[१५३

अंग-अंग प्रतिबिम्ब परि, दरपन-से सब गात ।
दुहरे, तिहरे, चौहरे, भूषन जाने जात ॥

ऐना-सम शरीरमें पड़ने, अंग-अंग-प्रतिबिम्ब अनूप ।
द्विगुण, तिगुण, चौगुण भासित हो, 'धनुष' भासिनिक भूषण-रूप ।

[१५४]

अंग-अंग छबिकी लपट, उपटति जाति अछेह ।
खरी पातरीऊ, तऊ—लगै भरी-सी देह ॥

बढ़ले जाइछ अंग-अंगसौं, 'धनुष' लपट सोभाक अथाक ।
अति पातरियो भेने तैयो—देह भरल-सन लागै ताक ।

[१५५]

रंच न लखियत, पहिरियें, कंचन-से सब बाल ।
कुंभिलाने जानीपरै, उर चम्पेकी माल ॥

स्वर्ण-शरीरा बाला-हियपर, 'चम्पक-माला किछु न लखाय ।
'धनुष' देखि पड़इत अछि तखने, जखने ओ जाइछ कुम्हिलाय ।

[१५६]

भूषन-भार सँभारि है, क्यौं यह तन सुकुमार ?
सूधे पाय न परत महि, सोभाहीके भार ॥

ई सुकुमार शरीर भूषणक, कहु सम्हारत कोनपरि बोझ ।
'धनुष' जखन सौन्दर्य-भारसौं, महिपर पड़ै न पद मे सोझ ।

[१५७]

न जक धरत, हरि हिय धरत, नाजुक कमला—बाल ।
भजत, भार-भयभीत ह्वै, घन, चन्दन, बनमाल ॥

कमला-सनि सुकुमारि हृदयपर, हरिकें धरइत किछु न डेराय ।
'धनुष' किन्तु चन्दन-बनमाला-कपूर-भारसौं स-भय पड़ाय ॥

[१५८]

अरुन-बरन तरुनी-चरन, अँगुरिन अति सुकुमार ।
चुवत सुरँग-रँग—सी मनो, चँपि बिछुअनके भार ॥

तरुणी-चरण अरुण रंगक अछि, आँगुर सब अति कोमल सोह ।
'धनुष' यथा बिछियाक भारसौं, छवि रँग लाल चुवति मनमोह ॥

[५६

छाले परिवेके डरनि, सकै न पैर छुआय ।
झिझकति हिये गुलाबके, झँवा झँवावत पाय ॥

फोंका पड़क डेरैं नहि रालो, तिय—पद, करसौं छुयि सकैछ ।
'धनुष' गुलाब-सुमन-झाँमहुँसौं, पद-धोइत हियमें झिझकैछ ॥

[१६०]

मै बरजी कै बार तू, इत कति लेति करौट ?
पँखुरी लगी गुलाबकी, परिहैं गात खरौट ॥

हम के बेरि मनाकै चुकलहुँ, लेछैँ एखर कियेक करौट ?
पँखुरि गुलाबक तनमें लगने, 'धनुष' खोंच लगतहु केँ गोट ॥

[१६१]

कन देयो सौंप्यो ससुर, बहू थुरहथी जानि ।
रूप-रहचटैं लगि लग्यो, माँगन सब जग आनि ॥

बुझि लघु करवाली पुतोहुकें, ससुर भीख देबक देल भार ।
रूप-लोभ-बस माँगै आबै, भिक्षा, 'धनुष' सकल संसार ।

[१६२]

रयौं-रयौं प्यासेई रहत, ज्यौं-ज्यौं पियत अघाय।
सगुन सलोने रूपकी, जु न चख-तृषा बुझाय ॥

जौं-जौं पीबै छवि अघायकै, तौं-तौं पियासले रहि जाय।
गुण-लावण्य-पूर्ण रूपक ई—नेत्र-तृषा नहि 'धनुष' मिझाय ॥

[१६३]

रूप-सुधा-आसव-छक्यौ, आसव पियत बनै न।
प्याले ओठ, प्रिया-बदन, रह्यौ लगायें नैन ॥

सुधा-सदृश सौन्दर्य-सुरा-पिबि, 'धनुष' सुरा नहि पिबति बनैछ।
प्याला लागल ठोरमध्य अछि, दृग तिय-मुखपर अड़ल रहैछ ॥

[१६४]

दुसह सौति सालै सु-हिय, गनति न नाह-बियाह।
धरे रूप-गुनको गरब, फिरै अछेह उछाह ॥

सौतिन छल दुसह, हिय सालौ, करै न पति-बिवाह-भय धाम।
'धनुष' रूप-गुण-गर्व-मस्त भै, अति प्रसन्न बिचरै सब ठाम ॥

[१६५]

लिखन बैठि जाकी सबिहि, गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगतके, चतुर चितेरे कूर ?

जकर चित्रकें बनबै बैसल, कै-कै अमित गर्व अभिमान।
चतुर चित्र-कर्त्ता संसारक, भेला सबहि 'धनुष' हतज्ञान ॥

[१६६]

(सो०) तो तन अवधि अनूप, रूप लग्यो सब जगतको।
मो दृग लागे रूप, दृगन लगी अति चटपटी ॥

तुअ तन अनुपमताक थीक हद, जग-लावण्य लगाबल गेल
'धनुष' रूप तुअ, मम दृग लागल, दृगमें अति व्याकुलता भेल

[१६७]

त्रिबली, नाभि दिखाय, कर—सिर ढकि, सकुचि समाहि।
अली! अलीको ओट ह्वै, चली भली बिधि चाहि ॥

सखि ! त्रिबली, नाभी देखायकै, 'धनुष' लजाय झाँपि, कर केश।
नायक-दिशि लखइत चलि देलक, सखिक ओड़ मे भरि आवेश ॥

[१६८]

देख्यो अनदेख्यो कियो, अँग-अँग सबै दिखाय।
पैठलसी तनमें सकुचि, बैठी चितहि लगाय ॥

अंग-अंग सब 'धनुष' देखाकै, पतिकें लखि बिनु देखल मानि।
नायक-तनमें पैसलि-सनि भै, लज्जित बैसलि घोघट तानि ॥

[१६९]

बिहँसि बुलाय, बिलोकि उत, प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूतको, पिय चूम्यो मुख चूमि ॥

विहुँसि बजाय 'धनुष' पतिकें लखि, प्रौढ़ प्रिया रसमें भै चूर।
पतिक चूमल सुत-मुखक चूमल, पुलकि, घमाय नारि परिपूर ॥

[१७०]

रहौ गुही बेनी लख्यौ, गुहिबेको त्यौनार।
लागे नीर चुचान ये, नीठि सुखाये बार ॥

थम्हह, गूहि चुकलह बेणी हरि ! 'धनुष' गुहक ढंगो लखि लेल।
कठिन . यत्नसौं केश सुखायल, पानि चुबैछ थामि कर गेल ॥

[१७१]

सेद-सलिल, रोमांच-कुश, गहि दुलहिन अरु नाथ।
दियो दियो सँग हाथके, हथलेवाही हाथ ॥

घामक जल, रोमाञ्चक कुशलै, 'धनुष' मुदित कन्या-वर भेल।
पाणिग्रहण-समय निज कर-संग, निज-निज हृदय सेहो दै देल ॥

[१७२]

मानहु मुख-दिखरावनी, दुलहिनि करि अनुराग ।
सास सदन, मन ललन हू, सौतिन दियो सोहाग ॥

मानू मुह-देखनामें देलक, कै नववधू उपर अनुराग ।
'धनुष' सासु घर, प्रीतम मन ओ—सौतिन सौंपल अपन सोहाग ॥

[१७३]

निरखि नवोढ़ा-नारि-तन, छुटत लरिकई-लेस ।
भौ प्यारो प्रीतम तियन, मनो चलत परदेस ॥

नवयुवती-नायिकाक तनसौं, छुटइत लखिकै नैनमति-लेश ।
'धनुष' नारिगणकें निज-निज पति प्रिय भेल यथा जाय परदेश ॥

[१७४]

डीठो दै बोलति हँसति, प्रौढ़-बिलास अपोढ़ ।
त्यौं-त्यो चलत न पिय नयन, छकये छकी नवोढ़ ॥

'धनुष' होड मे हँसइछ, बजइछ, जौं-जौं प्रौढ़ा-सम नवनारि ।
तौं-तौं पति-दृग नहि हटइछ जनु—मद, मदवती पियौलक ढारि ॥

[१७५]

खनि-कज्जल, चख-झख-लगन, उपज्यो सु-दिन सनेह ।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगिवै, लहि सुदेश, सब देह ?

काजर-शनि, दृग-मीन-लग्न अछि, उपजल 'धनुष' प्रेम शुभ-लग्न
सब तन—सुन्दर-देश पाबिकै, नृप भे किय नहि भोग स-मग्न

[१७६]

चितई ललचौंहैं चखनि, डटि घूँघट-पट माँह ।
छलसों चली छुवायकै, छिनक छबीली छाँह ॥

'धनुष' देखि आकर्षक दृगसौं, घोघक पट-तरसौं डटि पूर्ण
क्षण-हित छलसौं छुआ गेलि अछि, निज छाया मम तनसौं तूर्ण

[१७७]

कीने हू कोटिन जतन, अब कहि काढ़ै कौन ?
भौ मन, मोहन-रूप-मिलि, पानीमें को लौन ॥

कोटि यत्न कैनहुपर कहु के; 'धनुष' के सकै बाहर आब ?
हरिक रूपमें मिलि मम मन हा, यथा नोन जलमें गति पाब ॥

[१७८]

नेह न नैननिको कछू, उपजी बड़ी बलाय ।
नीर भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय ॥

थिक नहि प्रेम, आँखिमें कोनो—भारी रोग 'धनुष' ध्रुव थीक ।
सदा पानिसौं भरल रहै अछि, तद्पि पियासल रहै अधीक ॥

[१७९]

छला छबीले लालको, नवल नेह लहि नारि ।
चूमति, चाहति, लाय उर, पहिरति, धरति, उतारि ॥

सुन्दर कृष्णक औंठी, कामिनि, नव प्रेमोपहारमें पाय ।
चूमै, देखै, हियमें लगबै, पहिरै, धरै, उतारति जाय ॥

[१८०]

थाकी जतन अनेक करि, नेकुन छाड़ति गैल ।
करी खरी दुबरी सु-लगि, तेरी चाह-चुड़ैल ॥

'धनुष' अनेक यत्नकै थकलहुँ, रंच मात्र नहि पथ तज नारि ।
तोहर चाह-चुड़ैल लागि अति—दूबरि ओकरा कैल विचारि ॥

[१८१]

उन हरकी हँसिकै, इतै—इन सौंपी मुसकाय ।
नैन मिलत, मन मिलि गये—दोऊ, मिलवत गाय ॥

'धनुष' मना कैलनि हरि हँसिकै, राधा विहुँसि सौंपलनि गाय ।
गाय मिलाबक समय भेल मिलि, राधा—हरिक मनो हर्षाय ॥

[१८२]

फेर कन्दुक करि पौरि तें, फिर चितई मुसकाय ।
आई जामन लेन तिय, नेहैं गई जमाय ॥

दंत्र बहानाके ड्योढ़ीसौं, बिहुँसि देखलनि हमरा घूरि ।
आइलि छलिह 'धनुष' जोरन ले, गेली जमा प्रेम हिय पूरि ॥

[१८३]

या अनुरागी चित्तकी, गति समुझै नहिं कोय ।
जो-जौं बूड़ै स्याम-रँग, त्यौं-त्यौं उज्जर होय ॥

'धनुष' एहि प्रेमी मन-गतिकें, कयो मनुष्य नहि बूझि सकैछ ।
जौं-जौं मन डुब श्याम-रंगमें, तौं-तौं औरो उज्जर हैछ ॥

[१८४]

होमति सुख, करि कामना, तुमहि मिलनकी लाल !
ज्वालमुखी-सी जरति लखि, लगनि-अगिनकी ज्वाल ॥

अहँसौं मिलक कामनाकें हरि, सुखक होमकें रहलि कराल ।
ज्वालामुखी-'धनुष'-सम जरइछ, देखू प्रेमाग्निक वर ज्वाल ॥

[१८५]

मैं हो जान्यो लोयननि, जुरत बाढ़िहैं जोति ।
को हो जानत डीठि को, डीठि किरकिरी होति ?

छलहुँ बुझनि हम आँखिक मिलने, आँखिक ज्योति अवश्य बढ़ैछ ।
के जनैत छल दृगक हेतु दृग, दृगमें पड़ल धूरि-सम हैछ ॥

[१८६]

जो न जुगुति, पिय-मिलनकी, धूरि मुकति-मुख दीन ।
जो लहिये सँग सजन तौ, धरक नरक हू की न ॥

पियसौं मिलक युक्ति यदि नहि हो, धूरि मुक्ति-मुखपर तौं देह ।
निज-नायकक संग यदि हो तौं, 'धनुष' न डर नरकक बुझि लेह ।

[१८७]

मोहूसौं तजि नेह दृग, चले लागि वहि गैल ।
छिनक छ्वाय छबि-गुर-डरी, छले छबीले छैल ॥

'धनुष' त्यागि ममता हमरहुसौं, लागल जाय ओही पथ नैन ।
क्षणिक छुआके छवि-गुड़-भेली, सुन्दर युवक छलल बिनु चैन ॥

[१८८]

को जाने ह्वै है कहा ? जग उपजी अति आगि ।
मन लागै, नैनन लगै, चलै न मग लग लागि ॥

के जनैत अछि; 'धनुष' हैत की ? जगमें अति उपजल अछि आगि ।
दृगमें लगितहिं मनमें लागे, चलइ ओहि पथसौं हटि भागि ॥

[१८९]

रजत अटानन, हठ परयौ, सठमति आठो याम ।
भयो बाम वा बामको, रहै काम बे काम ॥

मूर्ख तजै निज अनुष्ठान नहि, पकड़ि लेल हठ आठो याम ।
दपथ ओहि अबलासौं रहइछ, 'धनुष' विमुख ओ निर्दय काम ॥

[१९०]

कहैं सौं हू-सी छनकको, तजि मुरली-धुनि, आन ।
किये रहति रति रात-दिन, कानन लाये कान ॥

मुरली-ध्वनि तजि, आन वस्तु सब, सुनक सपथ-सन खैलक बाल ।
निशि-दिन कान लगौने रहइछ, वन-दिशि 'धनुष' स-प्रेम बेहाल ॥

[१९१]

भृकुटी मटकनि, पीत-पट-चटक, लटकती चाल ।
चल चख-चितवनि चोरि चित, लियो बिहारीलाल ॥

भ्रू मटकय; पीताम्बर-चमकय, लटपट चलय 'धनुष' मद-पूर ।
चञ्चल नयनक ताकबसौं हरि, चित्त चोराय लेल, भै दूर ॥

१९२

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन-हिये, दई ! नई यह रीति ?

'धनुष' उलझ दृग, छुट कुटुम्ब सब, चतुरक चितमें जुटइछ प्रीति।
गेंठ परै दुर्जनक हृदयमें, प्रभु ! अपूर्व ई केहन रीति ?

[१९३]

चलति घैरु घर-घर तऊ, घरी न घर ठहराय।
समुझि वहै घरको चलै, भूलि वहै घर जाय॥

घर-घर निन्दा होइछ तैयो, घड़ियो भरि घरमें न रहैछ।
'धनुष' जानि ओकरे घर जाइछ, अनजानो पथ वैह धरैछ॥

[१९४]

डर न टरै, नींद न परै, हरै न काल-विपाक।
छिनक छाकि उछकै न फिरि, खरो विषम छवि-छाक॥

डरसौं छुट नहि, निन्द न आबै, बितनहु समय न होइछ कात।
कनियों पीने 'धनुष' न उतरै, छवि-मद, परम विषम थिक तात !

[१९५]

झटकि चढ़ति, उतरति अटा, नेकु न थाकति देह।
भई रहति नटको बटा, अटकी नागर-नेह॥

झटकि चढ़ै, उतरै कोठासौं, 'धनुष' रंच नहि थाकै गात।
चतुर नायकक प्रेम-पड़ल भै, नटक गेन्द-सम होइछ ज्ञात॥

[१९६]

लोभ लगी हरि-रूपके, करी साँट जुरी जाय।
हौं इन बेची बीच ही, लोयन बड़ी बलाय॥

कृष्णक रूप-लोभमें पड़ि दृग, सटा-पटा मिलि कैलक जाय।
बीचहिमें हमरा बेचल, दृग थिक भारी 'धनुष' बलाय॥

[१९७]

नई लगनि, कुलकी सकुच, विकल भई अकुलाय।
दुहू ओर ऐंची फिरति, फिरकी-लौं दिन जाय॥

'धनुष' लगन नव, कुल-लज्जा-बिच, पड़ि अति बिकलि भेलि अकुलाय।
दुहु दिशि खींचलि फिरै कामिनी, चकरी-सम दिन बीतल जाय॥

[१९८]

उततैं इत, इततैं उतहि, छिनक न कहुँ ठहराति।
जक न परत, चकरी भई, फिरि आवति फिरि जाति॥

उतसौं इत, इतसौं उत जाइछ, ठाढ़ न छण भरि कतहु रहैछ।
पुनि आबै, पुनि जाय चकों-सम, कल नहि हियकें 'धनुष' पड़ैछ॥

[१९९]

तजी संक, सकुचति न चित, बोलति बाक-कुबाक।
दिन छनदा छाकी रहति, छुटैन छिन छवि-छाक॥

नहि डेराय, चितमें लजाय नहि, अंट-संट बक 'धनुष' अनेक।
निशि-दिन चूर रहै अछि मदमें, नहि उतरै छवि-मद छण-एक॥

[२००]

टरै टार त्यौं ही टरत, दूजे टार टरै न।
क्यौं हू आनन आनसौं, नैना लागत हैं न॥

जाहि ठार पर ढरल ओही पर-ढरै, आन पर ढर नहि नारि।
कोनहु विधि दृग आनक मुखसौं, 'धनुष' न लागै गेलहुँ हारि॥

तेसर शतक

[२०१]

जकी थकी-सी ह्वै रही, बूझें बोलति नीठि ।
कहूँ डीठि लागी, लगी—कै काहूकी डीठि ॥

स्तम्भित, आश्चर्यित-सनि होइछ, पुछनहु बाज कठिनता पाबि ।
'धनुष' कतहु की लागल अछि दृग ? की ककरो दृग लागल आबि ?

[२०२]

पियके ध्यान गही-गही, रही वही ह्वै नारि ।
आपु आपही आरसी, लखि रीझति रिझवारि ॥

करति-करति पति-ध्यान नायिका, पति मैं रहलो 'धनुष' विचारि ।
अपनहि-पर-अपनहि रिझैति अछि, लखिकै दर्पण मोहनिहारि ॥

[२०३]

छुति हाँ, छुति इहाँ, नेको धरति न धीर ।
निसि-दिन डाढ़ी-सी फिरति, बाढ़ी गाढ़ी पीर ॥

ओतै-एतै पुनि एतै-ओतै कर 'धनुष' धरै नहि धीर कनेक ।
पीड़ा कठिन भैल बढ़ि निशि-दिन, घुमै पमरिया-सदृश कतेक ॥

[२०४]

समरस, समर-सँकोच-बस, बिबस न ठिकु ठहराय ।
फिर-फिर उझकति फिर दुरति, दुरि-दुरि झझकति जाय ॥

मदन-लाज-बलमैं सम भावें, रहै विवश भै, कतहु न सञ्च
उठि-उठि लखे, नुकाय 'धनुष' पुनि, नुका—नुका चमके अपरंच

[२०५]

उर उरझ्यो चितचोरसों, गुरु गुरुजनकी लाज ।
चढ़े हिँडोरे-से हिये, किये बनै गृह-काज ॥

उर ओझरायल चितचोरसौं, 'धनुष' देथ गुरुजन लाज ।
सबकी-ऊपर चढ़ल चित्तसौं, करितहिँ बनै घराऊ काज ॥

[२०६]

सखी सिखावति मान-विधि, सैननि बरजति बाल ।
हरुये कहु, मो मन बसत, सदा बिहारीलाल ॥

'धनुष' सखी सिखवैछ मान-विधि, करै निषेध सैनसौं बाल ।
नहुँ-नहुँ कहु, कैने निवास छथि, हमरा हृदय बिहारीलाल ॥

[२०७]

उर लीने अति चटपटी, सुनि मुरली-धुनि धाय ।
हौं हुलसी निकसी सु तौ, गयो हूल-सी लाय ॥

व्यापल व्याकुलता अति उरमैं, मुरली-ध्वनि-सुनि भरल उमंग ।
'धनुष' दौड़िकै औँ हम गेलहुँ, भाला भोंकि देल चलि अंग ॥

[२०८]

जो तब होत दिखा-दिखी, भई अमी इक आंक ।
लगै तिरीछी डीठि अब, ह्वै बीछीको डंक ॥

देखा-देखी तखन भेलपर, 'धनुष' पड़ल बुझि सुधा-समान ।
आब वैह तिरछी दृग बीछक, लागि डंक-सम हर मम प्राण ॥

[२०९]

लाल ! तिहारे रूपकी, कहौ रीति यह कौन ?
जासौं लागे पलक दृग, लागे पलक पलौ न ॥

तोहर रूपक रीति कोन ई ? 'धनुष' कहह कृपया घनश्याम !
जकरासौं पलभरि दृग लगने, पल भरि पल न परै हा राम !!

[२१०]

अपनी गरजनि बोलियत, कहा निहोरे तोहि ?
तू प्यारो मो जीवको, मो जिय प्यारो मोहि ॥

'धनुष' बजैछी, हम निजगरजें, तोहरापर मम की उपकार ?
तों हमरा प्राणक प्रिय छह ओ, अपन प्राण प्रिय मोहि अपार ॥

[२११]

सुखसौं बीती सब निसा, मनु सोये मिलि साथ ।
मूका मेलि गहे जु छिन, हाथ न छोड़े हाथ ॥

स-सुख बितल भरि राति सङ्ग मिलि-सूतल होथि, 'धनुष' जनु नाथ ।
मुठी बान्हि कर गहल छणिक निज, अगने तज न हाथ-सौं हाथ ॥

[२१२]

देखौं जागि त वैसिये, साँकर लगी कपाट ।
कित ह्वै आवत जात भजि, को जाने केहि बाट ?

'धनुष' जागिके लखइत छी तौं, ओहिना जिंजिर चढ़ल कपाट ।
कोन दै अबइत छथि; के जाने; जाथि पड़ाय नाथ कोन बाट ?

[२१३]

गुड़ी उड़ी लखि लालकी, अँगना, अँगना माँह ।
बौरी-लौं दौरी फिरति, छुवति छबीली छाँह ॥

गुड्डी उड़इत देखि प्रीतमक, 'धनुष' प्रियतमा आँगन माँह ।
दौड़लि घुरै बताहि जेकाँ ओ—सुन्दरि, छुबइत गुड्डिक छाँह ॥

[२१४]

उनको हित उनही बनै, कोऊ करै अनेक ।
फिरत काक-गोलक भयो, दुहू देह जनु एक ॥

हुनक प्रीति हुनकहिसौं बनइछ, कयो कर निन्दा 'धनुष' अनेक ।
काक-नयन-डिम्बा-सन घूमै, प्राण दुहूक देहमें एक ॥

[२१५]

करत जात जेती कटनि, बढ़ि रस-सरिता-स्रोत ।
आल-बाल-उर, प्रेम-तरु, तितो तितो दृढ़ होत ॥

रस-सरिताक धार बढ़ि करइछ, 'धनुष' कटाव जतेक अधीक ।
हिय-थालाक प्रेम-तरु ओतबे, दृढ़ होइछ, अचरज ई थीक ॥

[२१६]

खल-बढ़ई बल करि थके, कटै न कुबत-कुठार ।
आल-बाल उर झालरी, खरी प्रेम-तरु-डार ॥

खल-बढ़ही थाकल लगाय बल, काटि सकल नहि कुकथ-कुठार ।
प्रेम-वृक्ष-शाखा लह-लह कर, हिय-थालामें 'धनुष' अपार ॥

[२१७]

छुटत न पैयत छिनकु बसि, प्रेम-नगर यह चाल ।
मारयौ फिरि-फिरि मारियै, खूनी फिरत खुस्याल ॥

छुटि नहि सकइछ 'धनुष' छणिक बसि, चालि प्रेम-नगरक अछि ऐह ।
पुनि-पुनि मारल जाय मारले, घुमै मुदित हत्यारा जेह ॥

[२१८]

निरदय नेह नयो निरखि, जगत भयो भयभीत ।
यह अब-लौं न कहूँ सुनी, मरि मारियै जु मीत ॥

निष्ठुर निरखि नवीन नेहकें, जग भयभीत 'धनुष' भै गेल ।
ई न सुनल हम कतहु अखनधरि, प्रेमी मरि, मारै सुख लेल ॥

[२१९]

क्यों बसिये ? क्यों निबहिये ? नीति नेह-पुर नाहिं ।
लगा-लगी लोयन करैं, नाहक मन बँधि जाहिं ॥

कोना बसब ? निर्वाह कोना हो ? प्रेम-नगरमें हो नहि न्याय !
'धनुष' करै दृग रगड़ा-झगड़ा, निरपराध मन बान्हल जाय ॥

[२२०]

देह लग्यो ढिग नेहपति, तऊ नेह निरवाहि ।
ढीली अँखियन ही इतै, गई कनखियन चाहि ॥

पति छलैक तन-सटल निकटमें, तैयोकें नेहक निर्वाह !
कनखीसौं तकैत चलि देलक, 'धनुष' नयन नीचाँकें आह !!

[२२१]

हौं हिय रहति हई छई, नई जुगुति जग जोय ।
आँखिन आँखि लगे, खरी—देह दूबरी होय ॥

'धनुष' युक्ति जगमें ई नव लखि, छैछ हमर आश्चर्यित हीय ।
लाग आँखि-सौं-आँखि किन्तु हो, अति दुर्बल शरीर कमनीय ॥

[२२२]

प्रेम अडोल, डुलै नहीं, मुख बोले अनखाय ।
चित उनकी मूरति बसी, चितवन माँहि लखाय ॥

प्रेम-थीर अछि, डोलि सकै नहि, 'धनुष' बाज मुखसौं झुझुआय ।
चितमें प्रीतम-मूर्ति बसल अछि, जे नागरि-दृग-बीच लखाय ॥

[२२३]

चित तरसत, न बनत मिलत, बसि परोसके पास ।
छाती फाटी जाति सुनि, टाटी-ओट-उसास ॥

चित तरसै, पड़ोसमें रहनहु, 'धनुष' भेंट करइत न बनैछ ।
टाट-ओड़सौं ओकर श्वास सुनि, हमर हृदय हा ! अधिक फटैछ ॥

[२२४]

जाल-रन्ध्र-मग आनिको कछु उजास-सो पाय ।
पीठि दिये जगत्यों रहैं, डीठि झरोखे लाय ॥

जाल-रन्ध्रसौं तुअ—द्युति-आगिक, 'धनुष' इजोत रसिक किछु पाय ।
जग-दिशि दैत पीठि नित निज दृग, तुअ खिड़कीसौं रहै लगाय ॥

[२२५]

जदपि सुन्दर, सुघट पुनि, सगुनी दीपक-देह ।
तऊ प्रकाश करै तितौ, भरियै जितौ सनेह ॥

देह दीप-सम सुभग यद्‌पि अछि, 'धनुष' सुगढ़ गुणयुक्त अनेक ।
तद्‌पि करत ओतबे प्रकाश ओ, भरब ओहिमें-स्नेह जतेक ॥

[२२६]

डुलिबे चित न चलति हलति, हँसति न झुकति बिचारि ।
लिखत चित्र पिय लखि चितै, रही चित्र-सी नारि ॥

पतिकें लखि बनबैत चित्र लिय, चित्र-समान मित्र-दिशि ताक ।
दुविधामें पड़ि, हिलै न डोलै, झुकै, हटै नहि 'धनुष' अवाक ॥

[२२७]

नैन लगे तिहि लगन सो, छुटै न छुटै प्रान ।
काम न आवत एकहू, तेरे सौक सयान ॥

दृग लागल अछि एहन लग्नसौं, 'धनुष' छुटै नहि छुटनहु प्राण ।
यद्‌पि चतुरता सखि ! कलह बहु, कै न सकल एकहुटा त्राण ॥

[२२८]

साजे मोहन मोहको, मोही करत कुचैन ।
कहा करौं ? उलटे परे, टोने टोने नैन ॥

हम हिनका, हरिकें मोहक हित—साजल, हमरे विकल करैछ ।
'धनुष' सुभग दृग-टोना उलटे—लागल, की करु ? हृदय कँपैछ ॥

[२२९]

अलि ! इन लोयन-सरनिको, खरो विषम संचार ।
लगे लगाये एकसे, दुहु अनि करत सुमार ॥

नयन-वाण-गति अति अद्भुत अछि, चोट करै दुहु कातक नोक ।
जकर लगायब, लागब सखि ! धिक, दायक 'धनुष' समाने शोक ॥

[२३०]

चल-रुचि-चूरन डारि कै, ठग लगाय निज साथ ।
रह्यौ राखि हठि, लैगयो, हथाहथी मन हाथ ॥

दृग-सौन्दर्य्य-भस्म छिटि हे सखि ! 'धनुष' लगौलक ठक निज संग।
यद्यपि हठ करैत हम रहलहुँ, मन लै गेल सपदि, रचि ढंग ॥

[२३१]

जौं लौं लखौं न कुल-कथा, तौ लौं ठिकु ठहराय ।
देखे आवत देखिबो, क्योंहूँ रह्यौ न जाय ॥

जावरि नहि लखइत छी तावरि, कुलक कथा सब नीक लगैछ।
'धनुष' जखन देखबामें आबथि, बिनु लखने नहि तखन बनैछ ॥

[२३२]

वन-तनको निकसत, लसत, हँसत-हँसत इत आय ॥
दृग-खंजन गहि लैगयो, चितवनि-चेपु चढ़ाय ॥

वन-दिशि बहराइत, शोभित भै, हँसितहि-हँसितहिँ एहि दिशि आय।
दृग-खंजन-गहि गेल 'धनुष' लै, कनखी-रूपी लसा लगाय ॥

[२३३]

चित-बित बचत न रहत हठि, लालन-दृग बरजोर ।
सावधानके बटपरा, ये जागत के चोर ॥

मन, धन बचत न, हठकै छीनथि, 'धनुष' हरिक दृग अति बलवान।
सावधान नर-हेतुक ठक छथि, जागल नर-हित चोर महान ॥

[२३४]

धरति न ताल तानकी, उठ्यौ न सुर ठहराय ।
एरी ! राग बिगारि गो, बैरी बोल सुनाय ॥

ताल-तान-सुधि 'धनुष' रहल नहि, रहँ उठौलो सुर नहि थीर।
बैरी बोल सुनाय गेल सखि ! राग बिगाड़ि हृदय हनि तीर ॥

[२३५]

ये कांट ! मो पाँय गड़ि, लीन्ही मरत जिवाय ।
प्रीति जतावत भीतिसौं मीत जु काढ़्यो आय ॥

अरे काँट ! तों हमरा पद गड़ि, 'धनुष' मरबसौं लेलह बचाय।
प्रीतम प्रीति प्रगटकै, डरइत, बाहर कैलनि तोहरा आय ॥

[२३६]

जात सयान अयान ह्वै, वे ठग काहि ठगैं न ?
को ललचाय न लालके, लखि ललचौंहैं नैन ॥

'धनुष' मूर्ख बनि जाथि सयानो, ओ ठक ककरा नहि ठकि लेथि ?
कृष्णक लखि आकर्षक दृगकेँ के नहि ललचाइत मन देथि ?

[२३७]

जस-अपजस देखत नहीं, देखत साँवल-गात ।
कहा करौं लालच-भरे, चपल नयन चलिजात ?

यश-अपयशकेँ 'धनुष' लखै नहि, केवल देखै श्याम-शरीर ।
लोभ-पूर्ण चल जाय करू की ? विवश चपल-दृग, मम हरि-तीर ॥

[२३८]

नख-सिख-रूप-भरे भरे, तउ मांगत मुसकानि ।
तजत न लोचन लालची, ये ललचौंहीं बानि ॥

हरि-नख-शिख-सौन्दर्य—भरल अछि, 'धनुष' हमर दृग जैयो जानि।
तैयो लोभी दृग चाहै अछि, विहुँसनि हरिक, तजै नहि बानि ॥

[२३९]

ह्वै छिगुनो, पहुँचो गिलत, अति दीनता दिखाय ।
बलि-बावनकी ब्यौत सुनि, को बलि, तुम्हैं पत्याय ?

कनगुड़िया छुबि पहुँचा धैलह, 'धनुष' अधिक दीनता देखाय।
बलि-बामनक कथा सुनि तोहर—बलिहारी ! के जन पतिआय ?

[२४०]

नैना नेकु न मानहीं कितो कह्यौ समुझाय ।
तन-मन-हारे हू हँसे, तिनसों कहा बसाय ?

'धनुष' न कनियों मम दृग मानै, कतबो कही बुझाय-बुझाय ।
तन—मन गेलहुँ हारि हँसे जे, तकरा तैं कहू कोन उपाय ?

[२४१]

लटकि लटकि लटकत चलत, डटत मुकुटकी छांह ।
चटक भरयो नट मिलि गयो, अटक-भटक वट मांह ॥

'धनुष' चलैछथि ऐंठति-जुठति, चलइत लख निज मुकुटक छाह ।
अटकति-भटकति चटकीला नट, पथमें अकस्मात भेटलाह ॥

[२४२]

फिर-फिर बूझति कहि कहा, कह्यौ सांवरे-गात ?
कहा करत, देखे कहा, अली ! चली क्यों बात ?

पुनि पुनि तिय पुछ—'धनुष' कन्हैया, की कहलनि तोहरासौं, बाज ?
की कहैत, कहँ लखल, चलल सखि ! चर्चा हमर कोन विधि आज ?

[२४३]

तोही निरमोही ! लग्यो मोही यहै सुभाय ।
अन आये आवै नहीं, आये आवत आय ॥

'धनुष' निठुर ! तोंही कलह अछि, हमरो मनहुक यैह स्वभाव ।
बिनु तोरा ऐने नहि आबै, ऐने आबै आबह आब ॥

[२४४]

दुखहाइनि-चरचा नहीं, आनन-आनन आन ।
लगो फिरति ढूका दिये, कानन-कानन कान ॥

दुखदायिनि-मुखमें नहि आनक, चर्च रहैछ 'धनुष' ध्रुव थीक ।
बन-बन कान नुकाय लगावै, कहाँ सपथ-युत हम ई ठीक ॥

[२४५]

बहके सब जियकी कहत, ठौर-कुठौर लखै न ।
छिन औरे, छिन और हैं, ये छवि छाके नैन ॥

बहकि बजैत अछि बात मनक सब, 'धनुष' न देखै ठाम-कुठाम ।
छवि-मद-पीबि आँखि ई छण-छण, परिवर्तन पावै प्रति याम ॥

[२४६]

कहत सबै कवि कमल-से, मो मति नयन पखानु ।
नतरुक इन विय लगत कत, उपजत बिरह-कृसानु ?

सब कवि कमलक सम दृगके कह, हमरा मनसौं शिला-समान ।
नहि तौं 'धनुष' दृढुक लगलासौं, कौन विधि उपजति विरह-कृशान ?

[२४७]

लाज-लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं ।
ये मुँहजोर तुरंग-लौं, ऐंचतहू चलि जाहिं ॥

लाज-लगाम 'धनुष' नहि मानै, नहि अछि हमरा बसमें नैन ।
ई मुँह-ओर अश्व-सम खिचइत—रहलहुँ बढ़े, रहै नहि चैन ॥

[२४८]

इन दुखिया अँखियानको, सुख सिरजोई नाहिं ।
देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं ॥

'धनुष' एहि दुखिया आँखिक हित, सुखक सृष्टि कहियो नहि भेल ।
लखक समयमें लखलन जाइछ, बिनु लखने व्याकुल रहि गेल ॥

[२४९]

लरिका लैबेके मिसहिं, लंगर मो ढिग आय ।
गयो अचानक आँगुरी, छाती छैल छुवाय ॥

बचाकें लेबाक लाथसौं, ढीठ 'धनुष' हमरा लग आबि ।
गेल छुआय अचानक आँगुर, कुचसौं रसिक सु-अवसर पाबि ॥

[२५०]

डगकु डगति-सी, चलि ठिठकि, चितई चली सम्हारि ।
लिये जाति चित चोरटी, वहै गोरटी नारि ॥

एक डेग टगइत-सनि चलि ओ, ठमकि, देखि पुनि चललि सम्हारि ।
'धनुष' चोरौने चितकें जाइछ, वैह गोरि चोरनोयाँ नारि ॥

[२५१]

चिलक, चिकनई, चटक स्यौं, लफति सटक-लौं आय ।
नारि सलोनी साँवरी नागिनि-लौं डँसि जाय ॥

चमक, चटकपन, चिक्कनता-युत, बेंत-छड़ी-सनि लचकलि आय ।
श्यामांगी, सुन्दरी नायिका, 'धनुष' नागिनिक-सम डँसि जाय ॥

[२५२]

रह्यौ मोह, मिलनो रह्यौ, यौं कहि गही मरोर ।
उत दै सखी उराहनो, इत चितई मो ओर ॥

'प्रेमो, मिलबो गेल 'धनुष' रहि,—ई कहि घुरलि-सनि भ गेलि ।
ओम्हर सखीसौं उरहन दैकें, पुनि हमरा दिशि तकइत भेलि ॥

[२५३]

नहिं नचाय चितवनि चलनि, नहिं बोलति मुसकाय ।
ज्यौं-ज्यौं रुखो रुख करति, त्यौं-त्यौं चित चिकनाय ॥

'धनुष' न दृग नचायके देखै, वजयो कर नहि तिय मुसुकाय ।
जौं-जौं शुष्क भाव कर तौं-तौं, हमर चित्त चिकनैले जाय ॥

[२५४]

सहित—सनेह, सँकोच, सुख, स्वेद, कम्प, मुसकानि ।
प्रान पानि करि आपनो, पान धरे मो पानि ॥

प्रेम, पसेना, सुख, सँकोच ओ, विहुसनि, कम्प-सहित मम प्राण ।
निज कयले, मम करमें देलक, 'धनुष' पवित्र प्रियतमा पान ॥

[२५५]

चितवनि भोरे भायकी, गोरे मुख-मुसकानि ।
लगनि लटकि आली गरे चित खटकति नित आनि ॥

युवतिक भव्य भावसौं देखब, 'धनुष' गोर मुखसौं मुसुकैब ।
आबि खटकि नित हमरा चितमें, लचकि-लचकि सखि-गर लपटैब ॥

[२५६]

छिन-छिनमें खटकति सु हिय, खरी भीरमें जात ।
कहि जु चली अनही चितै, ओठनही बिच बात ॥

अधिक भीड़में जाइत तियकें, 'धनुष' बिना लखने मम ओर ।
ठोर-बीच कहि बात गेलि चलि, छण-छण हियमें खटकै जोर ॥

[२५७]

चुनरी स्याम सतार नभ, मुख ससिकै अनुहारि ।
नेह दबावत नींद-लौं, निरखि निसा-सी नारि ॥

तारा—सहित श्याम-साड़ी-नभ, 'धनुष' बदन अछि चन्द्र-समान ।
निशि-सम कामिनिकें लखि दाबै—प्रेम, निन्द-सम आबि महान ॥

[२५८]

मैं ले दयो, लयो सु कर, छुवत छनकि गो नीर ।
लाल ! तिहारो अरगजा, उर ह्वै लग्यो अबीर ॥

हम लै देल, लेल तिय करमें, छुवितहि छन दै सूखल नीर ।
तोहर अंगराग तिय-हियमें, लागल हरि ! से 'धनुष' अबीर ॥

[२५९]

तोपर वारौं उरबसी, सुन राधिके ! सुजान ।
तू मोहनके उर बसी, ह्वै उरबसी-समान ॥

चतुर-राधिके ! सुनू निछाउर, अहँपर करी उर्वशी नारि ।
हरि-हियमें हैकल-समान अहँ, 'धनुष' बसल छी, के सक टारि ?

[२६०]

हँसि उतारि हियतें दई, तुम जु वाहि दिन लाल !
राखति प्राण कपूर ज्यौं, वहै चुहटनी-माल ॥

निज हियसौं हरि अहँ जे ओहिदिन, 'धनुष' उतारि हार हँसि देल ।
वैह करजनिक माल विरहिनिक, प्राण बचा कपूर-सम लेल ॥

[२६१]

रह्यो लटू ह्वै लाल ! हौं लखि इत बाल अनूप ।
कितो मिठास दयो दई इत सलोने रूप ?

'धनुष' देखि अनुपम बालाकें, हम लट्टू भै महलहुँ जाय ।
हे हरि ! एहन सुभग छविमें विधि, कत देलनि माधुर्य लगाय ॥

[२६२]

सोहति धोती सेतमें, कनक-बरन-तन बाल ।
सारद-बारद-बीजुरी—भा रद, कीजत लाल !

सोनक रँग-सम तनवाली तिय, साड़ी स्वेत-मध्य हरि ! छाय ।
शरद्-समय-घन-बीचक बिजुली, 'धनुष' तुच्छ अति जानल जाय ॥

[२६३]

वारौं बलि, तो दृगनि पै, अलि, खञ्जन, मृग, मीन ।
आधी डीठि चितौनि जिन, किये लाल आधीन ॥

तोहर दृगपर करी निछाउर, 'धनुष' भ्रमर, खञ्जन, मृग, मीन ।
जे आधा आँखिक कटाक्षसौं, प्रीतमकँ कै लेल अधीन ॥

[२६४]

देखत बुर कपूर ज्यौं, उपै जाय जनि लाल !
छिन-छिन जाति परी खरी, छीनि छबीली बाल ॥

उड़ि नहि जाय कपूर-चूण-सम, लखितहि-लखितहिं, डर अछि श्याम !
छण-छणमें अति छीण होइ अछि, 'धनुष' विरहसौं नारि ललाम ॥

[२६५]

छिनकु छबीले लाल वह, जौं लगि नहि बतराय ।
ऊख, महूष पियूषकी, तौं लगि प्यास न जाय ॥

मधु, अमृत, कुसियारक ताधरि, नहि तुअ जाइछ धनुष पियास ।
मनमोहन ! बतिआयन जाधरि, एको क्षण सुन्दरि स—हुलास ॥

[२६६]

नागरि ! विविध विलास तजि, बसी गँवेलिन माहि ।
मूढ़निमें गिनिबी कि तू, हूठ्यो दै इठलाहि ॥

चतुरे ! बसली बहु विलास तजि, 'धनुष' गँमारि सबक सँग जाय ।
तहँ गमारिपनाक [illegible] एँ ठह, नहि तौं मूर्खा गनल बनाय ॥

[२६७]

पिय-मन-रुचि ह्वैबौ कठिन, तन-रुचि होत सिंगार ।
लाखि करो आँखि न बढ़ै, बढ़ै बढ़ाये बार ॥

पिय-मनमें रुचि हैब कठिन अछि, तन-शोभा, शृंगार बढ़बैछ ।
लाख करू दृग 'धनुष' न बढ़इछ, केश बढ़ौने अवश बढ़ैछ ॥

[२६८]

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल ।
अली ! कली ही सों बिंध्यो, आगे कौन हवाल ?

नहि पराग, नहि मधुर सुमन–रस, भेल विकासो नहि एहि काल ।
अलि ! कलिअहिसौं 'धनुष' लोभेलह, आगू होयत की तुअ हाल ?

[२६९]

दुसहाई सब टोलमें, रही जु सौति कहाय ।
सु तैं ऐंचि पिय आपु त्यौं, करी अदोखिल आय ॥

'धनुष' टोल भरि, तोहर सौतिन, एतदिन डाइनि रहलि कहाय ।
मुँह-कलङ्क कैल तों ओकरा, निज दिशि पति मन खींचि–लगाय ॥

[२७०]

देखत कुछ कौतुक इतै ? देखौ नेकु निहारि ।
कबकी इकटक डटि रही, टटिया अँगुरिन फारि ?

की किछु खेल लखै छी एहि दिशि ? लखु ओम्हरो किछु 'धनुष' निहारि ।
देखि कखनसौं रहलि एक टक ? आँगुरसौं टाटहुक फारि ॥

[२७१]

लखि लोयन, लोयननिको, को इन होइ, न आज ?
कौन गरीबनिवाजियौ ? किन तूठ्यौ रति-राज ?

'धनुष' देखि एहि आँखिक शोभा, के नहि हिनक रहल भ आज ?
कोन दीनपर कृपा कैल कहु ? कते प्रसन्न भेल रति-राज ॥

[२७२]

मन न धरति मेरो कह्यौ, तू आपने सयान ।
अहे परनि पर प्रेमकी, परहथ पारिन प्रान ॥

तों निज चतुरपनक गौरवसौं, हमर कथा नहि मनमें मान !
परक प्रेममें पडब—देब धिक, 'धनुष' परक करमें निज प्राण ॥

[२७३]

बहकि न इहि बहिनापने, जब-तब बीर ! बिनास ।
बचै न बड़ी सबीलहू, चील्ह-घोंसुआ—मांस ॥

एहि बहिनापनमें न बहकु साखि ! एहिसौं अखन-तखन भेल नाश ।
'धनुष, बचे नहि अति यत्नहुसौं, चिलहोरिक खोंतामें मांश ॥

[२७४]

मैं तोसों कैवा कह्यौ, तू जनि इन्हें पत्याय ।
लगालगी करि लोयननि उरमें लाई लाय ॥

तोहरासौं कैबेर कहल हम, नहि कर 'धनुष' एकर विश्वास ।
लागि, लगा दृग, हियमें देलक, आगि लगाय, करत ध्रुव नाश ॥

[२७५]

सन सूक्यौ, बीत्यौ बनौ, ऊखौ लई उखारि ।
हरी-हरी अरहरि अजौ, धर धरहरि हिय नारि !

कटल कपास, सुखायल पटुओ, 'धनुष' उखाड़ल गेल कुसियार ।
राहड़ि हरित-हरति अछि अखनहुं, सखि ! हिय धरह धैर्य्य, दुख-टार ॥

[२७६]

जौं वाके तनकी दसा, देख्यौ चाहत आप ।
तौ बलि, नेकु बिलोकिये, चलि औचक चुपचाप ॥

'धनुष' ओकर तन-दुर्गति अपने, यदि देखक चाही व्रजराय !
भल हो ! किन्तु अचानक चुप-चुप, रञ्च सञ्च चलि देखु हाय !

[२७७]

कहा कहौं वाकी दसा ? हरि ! प्रानके ईस ।
बिरह-ज्वाल जरिबो लखे, मरिबो भये असीस ॥

'धनुष' कहु की ओकर दशा हम ? प्राणेश्वर हरि ! कहल न जाय !
बिरह-ज्वालासौं जरइत लखिकैं, मरण संह आशीष बुझाय ॥

[२७८]

नेकु न जानी परति, यौं—पर्यो बिरह तन छाम ।
उठति दिया-लौं नादि हरि ! लिये तिहारो नाम ॥

'धनुष' रञ्च नहि जानि पड़ै अछि, देह एहन पातर भैगेल ।
तोहर नाम लितहिं हरि ! बिरहिनि, दीप-समान प्रकाशित भेल ॥

[२७९]

दियो सो सीस चढ़ाय लै, आछी भांति अएरि ।
जापै सुख चाहत लियो, ताके दुखहिं न फेरि ॥

जे देलनि से अङ्गीकृतकै, नीकजकां लो, शीश चढ़ाउ ।
जकरासौं सुख लेबक चाही, 'धनुष' ओकर नहि दुःख घुराउ ।

[२८०]

कहा लड़ैते दृग करे ? परे लाल बेहाल !
कहुँ मुरली, कहुँ पीत-पट, कहूँ मुकुट, बनमाल ॥

केहन लड़ाका दृगकें कैलह, 'धनुष' पड़ल छथि व्याकुल श्याम ।
मुरली, पीताम्बर, वनमाला, मुकुट पड़ल अछि ठाम—कुठाम ॥

[२८१]

तू, मोहन-मन गड़ि रही, गाढ़ी गड़नि गुवालि !
उठै सदा नटसाल-लौं, सौतिनके उर सालि ॥

'धनुष' गड़लि छह, हरिक हृदयमें, ग्वालिन ! गोक जकां तों जान ।
सालै सदा सौतिनिक हियमें नष्टशल्य-पीड़ाक समान ।

[२८२]

बड़े कहावत आपको, गरुवे गोपीनाथ !
तौ बदिहौं जो राखिहौं, हाथन लखि, मन हाथ ॥

अपनाकें कहबैत पैघ छी, 'धनुष, पूज्य हे गोपीनाथ !
तखन बुझब हम जखन कामिनिक-कर लखि, निज मन राखब हाथ ॥

[२८३]

रही दहेंड़ी ढिग धरी, भरी मथनियाँ बारि ।
फेरति करि उलटी रई, नई बिलोवनिहारि ॥

थेले रहल मटकुरी लगनमें, अरल माँटमे केवल बारि ।
उलटे 'रहा' घुमाय रहलि अछि, 'धनुष' शोभि नवमथना नारी ॥

[२८४]

कोटि जतन करिये तऊ—नागरि ! नेह दुरै न ।
कहे देत चित चीकनो, नई रुखाई नैन ॥

कोटि यत्न करु नैयो चतुरे ! 'धनुष' सकैअछि छपि नहि नेह ।
आँखिक कृत्रिम कात्रि कहइछ, प्रेम-शीलता निःसन्देह ॥

[२८५]

पूछे क्यौं रूखी परति ? सगि-बगि रही सनेह ।
मनमोहन-छबिपर कटी, कहै कँट्यानी देह ॥

पुछने किये कुपित होइत छह ? छह तल्लीन प्रेममें नारि !
'धनुष' मुग्ध छह, कृष्णक छबिपर, पुलकित तन कहइछ परचारि ॥

[२८६]

तू, मति माने मुकतई, किये कपट-चत कोटि ।
जौं गुनही तौं राखिये, आँखिन माँहि अँगोटि ॥

कपट-कथा कहि कोटि 'धनुष' सौं, मानिनि ! अपन मुक्ति नहि मान ।
अपन आँखिमें बान्हि धरह बरु, यदि हमरा तों दोषी जान ॥

[२८७]

बाल-बेलि सूखी सुखद, यहि रूखे रुख-घाम ।
फेरि डहडही कीजिये, सु-रस सींचि घनश्याम !

एहि क्रोध-भावक आतपसौं, सुखदा बाला-लता सुलोल ।
सुभग प्रेम-जल सींचि 'धनुष' करु हरि ! हरियर अवसर अछि पैल ॥

[२८८]

हरि-हरि, बरि-बरि करि उठति, करि-करि थकी उपाय ।
वाको जुर बलि बैदजू ! तो रस जाय-तो-जाय !!

जरि-जरि, 'हरि-हरि' करि-करि उठइछ, कै-कै थकलहुँ 'धनुष' उपाय ।
छी. सुनह हे वैद्य ! सखिक ज्वर, अहिँक सु-रससौं सम्भव जाय ॥

[२८९]

तू रहि, सखि ! हौं ही लखौं, चढ़ि न अटा बलि, बाल !
सबही बिनु ससिही उदै, दैहैं अरघ अकाल ॥

सखि ! तों रह, हमहीं लखैतछी, भल हो ! चढ़ु न अटापर बाल !
'धनुष' बिना चन्द्रोदय मेलहुँ, देति सबहि जन अरघ अकाल ॥

[२६०]

दियो अरघ, नीचे चलौ, संकट भानै जाय ।
सुचितौ ह्वै औरो सबै, ससिहि बिलोकैं आय ॥

देलह अर्घ्य, 'धनुष' चल नीचाँ, संकट-चौठ करी चलि संग
आनो सब शशि लखी सुचित भै, हो न पूर्ण-शशि-मुखसौं दंग

[२६१]

वे ठाढ़े, उमदाहु उत, जल न बुझै बड़वागि ।
जाहीसौं लाग्यो हियो, ताहीके हिय लागि ॥

आ छवि ठाढ़ ऐंठइ ओम्हरहि, जलसौं नहि बड़वाग्नि मिझाय
'धनुष' हृदय जकरासौं लागल, ओकरे हियसौं लपटह जाय

[२६२]

कहै कहे न; कहा कह्यौ; तो सो नन्दकिशोर ?
बड़बोली बल होति कत? बड़े दृगनके जोर ॥

'धनुष' कहल की; कहने हमरा ? तोहरासौं श्रीनन्दकिशोर
किये बजैछे बढ़ि ? बलिहारी ! बड़-बड़ दृगक राखि मन जोर

[२६३]

मैं यह तोहि मैं लखी, भगति अपूरब बाल !
लहि प्रसाद-माला जु भौ, तन कदम्बकी माल ॥

देखल एहन अपूर्व भक्ति हम, 'धनुष' तोहरहिमैं , है बाल
हरि-प्रसाद-माल। पौलहिसौं, तुअ तन भेल कदम्बक माल

[२६४]

छोरी लाई सननकी, कहि गोरी मुसकात ।
थोरी थोरी सकुचसौं, भोरी-भोरी बात ॥

किछु-किछु लज्जासौं ओ सुन्दरि, कहि-कहि कथा मधुर मुसुकाय
हिस्सक-सन से सुनक लगौलक, 'धनुष' करब हम कौन उपाय

[२६५]

चित दै चितै चकोर ज्यौं, तीजै भजै न भूख ।
चिनगी चुगै अंगारकी, चुगै कि चन्द्र-मयूख ॥

'धनुष' लखह दै चित चकोर-दिशि, तेसर भजै न लगने भूख।
चिनगी-चुनि आगिक खाइछ, वा—बिछिकै खाइछ चन्द्र-मयूख ॥

[२६६]

कबकौ ध्यान लगी लखौ; यह घर लगिहै काहि ?
डरियत भृंगी-कीट-लौं, जिन वहई ह्वै जाहि ॥

ध्यान लगौने अछि कहियासौं, लखु, ई घरके सकल लस्हारि ?
भय अछि भृङ्गी-कीट-न्यायसौं, 'धनुष' हैति की नायक नारि ॥

[२६७]

रही अचल-सी ह्वै मनौ, लिखी चित्रकी आहि ।
तजै लाज डर लोकको, कहौ बिलोकति काहि ?

निश्चल-सनि भै रहलिह अछि, जनु—चित्र लिखलि-सनि हो अनुमान ।
'धनुष' लाज, डर संसारक तजि, ककरा लखइत छह दै ध्यान ?

[२६८]

ठाढ़ी मन्दिर पै लखै, मोहन-दुति सुकुमारि ।
तन थाकेहू ना थके, चख चित चतुर निहारि ॥

कोठापर भै ठाढ़ि लखै अछि, 'धनुष' श्याम-शोभ सुकुमारि ।
तन थकनहु थकइछ नहि मन, दृग, सखी ! तमासा लखु निहारि ॥

[२६९]

पलन चलैं, जकि-सी रही, थकि-सी रही उसास ।
अबही मन रितियो कहा ? मन पठयो केहि पास ?

पल चल नहि, ठकुआइलि-सनि अछि, थाकल-सन श्वासो भै गेल ।
रिक्त किये अखनहि तन कैलह ? 'धनुष' पठा मन ककरा देल ?

[३००]

नाक मोरि सीबी करै, जिते छबीली छैल।
फिरि-फिरि भूलि वहै गहै, पिय कँकरीली गैल॥

नाक मोरि 'इस-इस' करइत अछि, 'धनुष' जहाँ ओ सुन्दरि नारि।
भरै रसिक प्रीतम कंकड़-मय—बाट वैह, के येरि बिसारि॥

चारिम शतक

[३०१]

हित करि तुम पठयो, लगे—वा बिजनाकी बाय।
टरी तपनि तनको, तऊ—चली पसीने न्हाय॥

पठा देलह बीअनि तों हित बुझि, हटल ओहि पवने तन-ताप।
तैयो गेलि घामसौं तर भै, 'धनुष' पहल तुअ प्रेमक दाप॥

[३०२]

नाम सुनतही ह्वै गयो, तन औरै, मन और।
दबै नहीं, चित चढ़ि रह्यो, अबै चढ़ाये त्यौर॥

'धनुष' नाम सुनितहि भै गेलहु, तन किछु आने, मन किछु आन।
चितमें चढ़लै प्रेम नहि दबइछ, आब चढ़ौने भौंह-कमान॥

[३०३]

नेको उहि न जुदी करी, हरषि जु दी तुम माल।
उरते बास छुट्यो नहीं, बास छुटेहू लाल!

मुदित माल निज तों जे देलह, तिय ओकरा नहि करै फराक।
'धनुष' बास नष्टो भेने हरि! उरसौं छुट न बास मालाक॥

[३०४]

परसत, पोंछत, लखि रहत, लगि कपोलके ध्यान।
कर लै प्यो पाटल विमल, प्यारी पठये पान॥

पति लै विमल गुलाब-कुसुम कर, 'धनुष' पठावल तिय-हित पान।
देखि कुसुमके परसै, पोछै, नायिकाक गालकके ध्यान॥

[३०५]

मनमोहनसौं मोह करि, तू घनस्याम निहारि।
कुंजबिहारीसौं बिहरि, गिरधारी उर धारि॥

प्रेम करब तों मोहनसौं करु, देखब तौं देखू घनश्याम।
'धनुष' बिहारीसौं बिहार करु, गिरिधरी—धारु उर बाम!

[३०६]

मोहि भरोसो रीझि है, उझकि झाँकि इक बार।
रूप रिझावनहार वह, ये नैना रिझवार॥

अछि भरोस हमरा तों रिझबह, देखह उचकि 'धनुष' एक बेर।
रूप रिझौनिहार अछि कान्हक, रिझनिहार-गुण तुअ दृग केर॥

[३०७]

कालबूत-दूती बिना, जुरै न आन उपाय।
फिरि ताके टारे बनै, पाके प्रेम लदाय॥

कालबूत-दूती बिनु जुटइछ 'धनुष' प्रेम नहि, आन उपाय।
प्रेम-मिलान जखन थिर होइछ, दुती भराव हटौले जाय।

[३०८]

गोप अथाइनतें उठे, गोरज छाई गैल।
चलि, बलि, अलि! अभिसारकी! भली सँझौखी सैल॥

बैसकसौं उठलाह गोपगण, 'धनुष' गेल गोरज पथ छाय।
अभिसारमें चलह बलिहारी! सखी! सैर साझुक सुखदाय॥

[३०९]

सघन कुंज, घन घन-तिमिर, अधिक अँधेरी रात।
तऊ न दुरिहैं स्याम ! यह, दीप-सिखा-सी जात ॥

सघन कुञ्ज, घन-तिमिर घने अछि, 'धनुष' अन्हार अधिक अछि राति।
श्याम ! सकति नहि छपि तथापि ई, दीप-शिखा-सनि पथमें जाति ॥

[३१०]

फूली-फाली फूल—सी, फिरति जु बिमल बिकास।
भोर-तरैयां होहिंगी, चलत तोहि पिय-पास ॥

विमल विलास-सहित तुअ सौतिन, फरल-फुलल फिर फुल-समान।
'धनुष' तोरा पिय-लग अैतहि ओ, हैति प्रात-तारा-सम म्लान ॥

[३११]

ज्यो सरद-राकाससी, करति क्यो न चित चेत ?
मनो मदन-छितिपालको, छांहगीर छबि देत ॥

शरद्-पूर्ण-शशि 'धनुष' गेल उगि, करह न किय सखि ! चित्तमें चेत ?
मान तजह, जनु मदन-भूप हो, शोभित—आयल छत्र-समेत ॥

[३१२]

निसि अँधियारी, नील-पट, पहिरि चली पिय-गेह।
कहौ दुराई क्यो दुरै, दीप-सिखा-सी देह ?

निशि अन्हारमें पहिरि नील-पट पति-गृह 'धनुष' चललि चुपचाप।
कहह कोना छपि सकत छपौने ? दीप-शिखा-सम तन-धुति हाय !

[३१३]

छुव्यो छपाकर छिति छवै, तम ससिहरि न सँभारि।
हँसति-हँसति चलि ससिमुखी, मुखतें घूँघट टारि ॥

छपल चन्द्र, महि भेल तमोमय, 'धनुष' सम्हरि चल, डरु न रञ्च।
पथमें चोप हटाय चलू अहँ, चन्द्रमुखी ! हँसि-हँसि भै संच ॥

[३१४]

अरी ! खरी सटपट परी, बिधु आधे मग हेरि।
संग लगे मधुपनि लई, भागन गली अँधेर ॥

हे सखि ! पथ आधा जौं चललहुँ शशि-लखि गेलहुँ, अधिक डराय।
'धनुष' भाग्यसौं तमके देलक, भ्रमरावली गली बिच आय ॥

[३१५]

जुवति जोन्हमें मिलगई, नेकु न परति लखाय।
सौंधेके डोरेन लगी, अली चली सँग जाय ॥

मिलल्हि इजोरियामें युवती अति, 'धनुष' रञ्च नहि पड़ैं लखाय।
तन-सुगन्ध—डोरी धै सखि सब, संग-संग पाछाँसौं जाय ॥

[३१६]

ज्यों-ज्यों आवति निकट निसि, त्यौं-त्यौं खरी उताल।
झमकि-झमकि टहलैं करे, लगी रहँचटैं बाल ॥

'धनुष' निकट निशि जौं-जौं अबइछ, तौं-तौं अधिक शीघ्रसौं बाम।
प्रेमपूर्ण सोत्साह करै अछि, छमकि-छमकि सब गेहक काम ॥

[३१७]

झुकि-झुकि झपकौंहैं पलनि, फिरि-फिरि जुरि जमुहाय।
बींदि पियागम नींद—मिस, दीं सब सखी उठाय ॥

'धनुष' जानि निज प्रीतम-आगम, झुकि—झुकि औंघायल पल मारि।
नीन्द-लाथसौं पुनि-पुनि हाफी—कै घुरि जगबै, सखिकें टारि ॥

[३१८]

अँगुरिन उचि, भरु भीति दै, उलमि चितै चख लोल।
रुचिसौं दुहूँ दुहूनके, चूमे चारु कपोल ॥

दै भर भीत, उचकि आँगुरपर, झूकि, स-चञ्चल लखइत आँखि।
'धनुष' स-प्रेम दुहुक दुहु करइछ, सुन्दर गालक चुम्बन भाँखि ॥

[३१९]

चालेको बातें चलीं, सुनत सखिनके टोल ।
गोयेहू लोचन हँसत, विकसत जात कपोल ॥

सखिक सभामें 'धनुष' चलै अछि, द्विरागमनक गप सुनु बाल !
मोद छपौनहु नहि छपैत अछि, आँखि हँसैअछि, विकसै गाल ॥

[३२०]

मिस-ही-मिस आतप दुसह, दई और बहकाय ।
चले ललन मनभावती, तनकी छांह छपाय ॥

लाथ-हि-लाथ दुसह रौदकके, अन्य सखीकें देल हटाय ।
'धनुष' देल चलि हरि, राधाकें, तन-छायामें सदहि छपाय ॥

[३२१]

लयाई, लाल ! विलोकिये, जियकी जीवन-मूलि ।
रही भौनके कोनमें सोनजुही-सी फूलि ॥

आनल, अहँ देखू निज प्राणक, सञ्जीवनी-लता घनश्याम !
'धनुष' ठाढ़ि अछि घरक कोनमें, सोनजुही-सम फुलति ललाम ॥

[३२२]

नहिं हरि-लौं हियरे धरो, नहि हर—लौं अरधंग !
एकतही करि राखिये, अंग-अंग प्रत्यंग ॥

नहि हरि-सम हियमें लगाय धरु, नहि शिव-सम अर्द्धाङ्ग बनाय ।
'धनुष' कामिनिक अंग-अंगसौं, राखू अहँ प्रति अंग सटाय ॥

[३२३]

रही पैज कीन्ही जु मैं, दीन्ही तुम्हैं मिलाय ।
राखौ चम्पक-माल ज्यौं, लाल ! गरे लपटाय ॥

रहल प्रतिज्ञा, जे हम कैलहुँ, 'धनुष' अहाँसौं देल मिलाय ।
चम्पक-माला-सम निज गरमें, हे हरि ! तियकें लिय लपटाय ॥

[३२४]

रही फेरि, मुह हेरि इत, हित-समुहैं चित नारि ।
दीठि परत उठि पीठकी पुलकें कहैं पुकारि ॥

'धनुष' घुरा मुँह पसहर लखइ तौं, किन्तु चित्त पिय लग छइ नारि !
पड़ितहि दृष्टि, पीठ पुलकित भै, कह ई कथा पुकारि-पुकारि ॥

[३२५]

दोऊ चाह भरे कछू—चाहत कह्यौ, कहै न ।
नहि जाचक सुनि सूम-लौं, बाहर निकसत बैन ॥

दुहु प्रेमसौं पूर्ण रहैअछि, किछु कहचाहै, किन्तु कहै न ।
'धनुष' भिखारिक नाम सुनिकें, कृपणक-सम बहराय न बैन ॥

[३२६]

लहि सूने घर कर गह्यौ, दिखा-दिखीकी ईठि ।
गड़ी सुचित नाहीं करनि, करि ललचौंही दीठि ॥

'धनुष' प्रीति छल देखा-देखी, धैलहुँ बाँहि शून्य घर पाबि ।
ललचायल दृगसौं 'नहि' कहबे, हमरा हृदय गड़ल से आबि ॥

[३२७]

गली अँधेरी साँकरी, भौ भटभेरा आनि ।
परे पिछाने परसपर, दोऊ परस पिछानि ॥

'धनुष' गली साँकर, अन्हारमें, आबि भेल दुहुकें भटभेर ।
स्पर्श चिन्हसौं दुहु परस्पर—चिन्हल गेल, मन हर्षित ढेर ॥

[३२८]

हरखि न बोली लखि ललन, निरखि अमिल सब साथ ।
आँखिनहीमें हँसि धरयो, सीस हिये धरि हाथ ॥

संगिनि सबकें जानि अपरिचित, हरि लखि, मुदित भेल नहि भाखि ।
'धनुष' आँखिमें हँसिकें राखल, हृदय तथा शिरपर कर राखि ॥

[३२९]

मैं हठ बनत न भावतो, चित तरसत अति प्यार।
धाति हगाय-लगाय उर, भूषन, बसन, हथ्यार ॥
भेट करैत बन नहि पियलौं, अति प्रीतिक हित चित तरसैछ।
स्वामिक अस्त्र, वस्त्र, भूषणकें, 'धनुष' प्रेमसौं उर लगबैछ ॥

[३३०]

कोटि जतन कोऊ करौ, तनकी तपन न जाय।
जौं लौं भीजे चीर लौं, रहै न प्यौ लपटाय ॥
यत्न कोटि कयो, करू किये नहि, ओकरा तनक ज्वाल नहि जैत।
आँचरि तीतल चीर जकाँ नहि, 'धनुष' आबि प्रीतम लपटैत ॥

[३३१]

तनक झूठ निसवादिली, कौन बात पर जाय।
तिय-मुख रति-आरम्भकी, नहिं, झूठिये मिठाय ॥
'धनुष' जाय कें, एहि कथापर? कनियों झूठ अ-रुचिकर थीक।
रति-आरम्भ-समय-तिय-मुखसौं, मधुर लाग 'नहि' झूठो नीक ॥

[३३२]

भौं हनि त्रासति, मुख नटति, आँखिनसौं लपटाति।
ऐचि छुड़ावति कर इँची, आगे आवति जाति ॥
भहुँसौं डरबै, मुखसौं 'नहि' कर 'धनुष' आँखिसौं तिय लपटाय।
खींचि छोड़वितहुँ कर, खींचलि-सनि, नायक-आगू ससरलि जाय ॥

[३३३]

दीप उजेरे हू पतिहिं, हरत बसन रति-काज।
रही लिपटि छबिकी छटनि, नैंको छुटी न लाज ॥
दीप-ज्योतियहुमें रति-हित पति, साड़ी 'धनुष' हरणकें लेल
छविक छटासौं लपटलि रहने, लाज कनेको कम नहि भेल ॥

[३३४]

लखि दौरत पिय-कर-कटक, बास छुड़ावन काज।
बरुनी-बन दृग-गढ़निमें, रही गुढ़ौ करि लाज ॥
वस्त्र-वास छोड़बक हित दौड़ति, प्रीतम-करक सैन्यकें देखि।
बरुणी-वन-दृग-गढ़हिं समायल, 'धनुष' लाज चुप लक्षित लेखि ॥

[३३५]

सकुचि, सरकि पिय-निकटतैं, मुलकि कछुक तन तोरि।
कर आँचरकी ओट करि, जमुहानी मुख मोरि ॥
'धनुष' लजाय, घुसकि पिय-लगसौं, विहुँसि अँगैठी कैलक हेरि।
हाथ मथा आँचरक ओटकें, हाफी कैलक मुंहकें फेरि ॥

[३३६]

सकुच सुरत आरम्भही, बिछुरी लाज लजाय।
ढरकि ढार ढरि ढिग भई, ढीठ ढिठाई आय ॥
रति-आरम्भहि तिय सकुचाकें, लज्जा लाजसौं दुर हटि गेलि।
ढीठ ढीठपनकें ऐलापर, 'धनुष' घुसकि लग अबइत भेलि ॥

[३३७]

पति रतिकी बतियाँ कही, सखी लखी मुसकाय।
कै-कै सबै टलाटली, अली चली सुख पाय ॥
पति रति-कथा कहल, से बुझि तिय, 'धनुष' देखि सखि दिशि मुसुकाथि।
कै-कै टालमटोल सखी सब, मुदित मर्म बुझि उठि घर जाथि ॥

[३३८]

चमक, तमक, हाँसी, सिसक, मसक, झपट, लपटानि।
ये जिहि रति सो रति मुकुति, और मुकुति अति हानि ॥
चमकब, तमकब, बिहुसब, सिसकब, मसकब, झपटब, लपटब, आनि।
ई जेहि रतिमें मोक्ष सेह रति, औरो मोक्ष 'धनुष' अति हानि ॥

[३३९]

जदपि नाहिं नाहीं नहीं, बदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह हाँसी भरिनु हाँसीयै ठहराति ॥

'नहि, नहि, नहि' क यदपि तिय-मुखमें, 'धनुष' रटनि लागि अति आय।
तदपि हास्य-परिपूर्ण-भौंहुसौं, 'नहि, नहि' 'हँऽ'-सम जानल जाय ॥

[३४०]

परयो जोर बिपरीत-रति, रुपी सुरति रनधीर।
करत कोलाहल किंकिनी, गह्यौ मौन मंजीर ॥

उलटा रति बल पकड़ि रहल अछि, धीरा रति-रणमें अछि व्यस्त।
कै अनोर किंकिणी रहल अछि, 'धनुष' मौन अछि नूपुर त्रस्त ॥

[३४१]

बिनती रति बिपरीतकी, करी परसि पिय पाय।
हँसि अनबोलेही दियो, ऊतर दियो बुताय ॥

प्रीतम रति-विपरीत करक हित, पद धै विनती करइत भेल।
'धनुष' बिना बजनहि ओ बाला, दीप मिझाके उत्तर देल ॥

[३४२]

मेरे बूझत बात तू, कत बहरावति बाल!
जग जानी बिपरीत-रति, लखि बिंदुली पिय भाल ॥

'धनुष' बात बहलाबह की तों? हमरा पुछलापर हे बाल!
पति-ललाटपर टिकुली लखि, जग-जानल रति-विपरीतक हाल ॥

[३४३]

राधा हरि, हरि राधिका, बनि आये संकेत।
दम्पति रति-बिपरीत-सुख, सहज सुरत हू लेत ॥

राधा हरि, हरि राधा बनिकै, 'धनुष' आबि दुहु गुप्तस्थान।
दम्पति स्वाभाविक रतियहु में, रति-विपरीत-सुखक कर ध्यान ॥

[३४४]

रमन कह्यौ हठि रमनिसौं, रति बिपरीत बिलास।
चितई करि लोचन सतर, सलज, सरोष, सहास ॥

हरि हठकें राधासौं कहलनि, रति-विपरीत-विलासक बात।
दृगके बङ्किम, स-लज्ज, रोष-युत, 'धनुष' स-हास्य लखल, भै कात ॥

[३४५]

रँगी सुरत-रँग पिय-हिये, लगी जगी सब राति।
पैंड़-पैंड़पर ठिठकिकै, ऐंड़ भरी ऐंडाति ॥

रसिक रंगमें रँगलि प्रीतमक—हिय लागलि, जागलि भरि राति।
ठुमुकि-ठुमुकि पद-पदपर ऐंठति, 'धनुष' स-गर्व मार्गमें जाति ॥

[३४६]

लहि रति-सुख लगियै गरे, लगी लगौ ही नीठि।
खुलत न, मो मन बँधि रही, वहै अधखुली डीठि ॥

रति-सुख पाबि, सटलि गरसौं तिय, लज्जित दृगसौं दुखित लखइ।
आधा खूजल ताहि नयनमें, मम मन बान्हल 'धनुष' रैहइ ॥

[३४७]

कर उठाय, घूँघट करत, उसरत पट-गुझरोट।
सुख मोटैं लूटी ललन, लखि ललनाकी लोट ॥

हाथ उठाय, घोघ कढ़इत छल, सिकुड़ल वस्त्र 'धनुष' हटि गेल।
लखि त्रिवली नायिकाक नायक, सुखक मोटरी सब लुटि लेल ॥

[३४८]

हँसि ओठन बिच, कर उचै, किये निचौंहै नैन।
खरे अरे पियके प्रिया, लगी बिरी मुख दैन ॥

ठोर-बीच हँसि, हाथ उठाकै, 'धनुष' नयन नीचाकै नारि।
अति हठ कैने स्वामिक मुखमें, पानक खोली दैल बिचारि ॥

[३४९]

नाक मोरि, शाहीं करैं, नारि निहोरे लेय।
छुवत ओठ पिय आंगुरिन, बिरी बदन तिय देय॥

'धनुष' सिकोड़ि नाक 'नहि-नहि' कै, तिय विनती कत कैने लेथि।
छुवति अधर-आंगुड़सौं प्रीतम, मुखमें पानक बीड़ी देथि॥

[३५०]

सरस सुमिल चित-तुरंगकी, करि-करि अमित उठान।
गोय निबाहे जीतिये, प्रेम-खेल—चौगान॥

रस-युत मिलनसार चित-अश्वक, कै-कै धावा 'धनुष' कतेक।
गुप्त निबाहहि जितवह हे सखि! प्रेम-खेल-चौगानक टेक॥

[३५१]

दृग मींचत मृगलोचनी, धरयो उलटि भुज बाथ।
जानि गई तिय नाथके, हाथ परसही हाथ॥

आँखि मुनल जैतहि मृगनयनी, भुज उलटाय, धैल अँकवारि।
कर-स्पर्शसौं 'धनुष' गेलि बुझि, 'ई प्रीतमक हाथ थिक'-नारि॥

[३५२]

प्रीतम दृग मीचत प्रिया, पानि-परस छुख पाय।
जानि पिछानि अजान-लौं, नेकु न होत लखाय॥

तियकें आँखि बन्द कैलापर, करकें परसि 'धनुष' सुख पाब।
जानि-बूझि पति अनु अजान भै, प्रगट भाव पति किछु न जनाब॥

[३५३]

कर मुंदरीकी आरसी, प्रतिबिम्बित प्यौ पाय।
पीठ दिये निधरक लखै, इकटक डीठि लगाय॥

कर-औंठीक नगीनामें लखि, पति-प्रतिबिम्ब 'धनुष' अति नीक।
दृष्टि लगाय एक टक देखै, सुन्दर छवि, द पीठ हरीक॥

[३५४]

मैं मिसहा सोयो समुझि, मुंह चूम्यो ढिग जाय।
हँस्यो खिस्यानी गर गह्यो, रही गरे लपटाय॥

'धनुष' छलीकें, सूतल बुझि हम, मुह चुमलहुं ओकरा लग जाय।
हँसल, लजैलहुं, गर-गहि लेलक, हमहु गेलहुं गरमें लपटाय॥

[३५५]

मुंह उघारि प्यौ लखि रह्यौ, रह्यौ न गो मिस-सैन।
फरके ओठ उठे पुलक, गये उघरि जुरि नैन॥

देखि रहल छल पिय उघारिमुख, 'धनुष' भूठ सुतल नहि गेल।
ठोर फड़क, रोमाञ्च भेल तन, आँखि उघरिकें मिलइत भेल॥

[३५६]

बतरस लालच लालकी, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौंहन हँसे, देन कहै नटि जाय॥

प्रेमालाप करक हित कृष्णक, राधा मुरली धैल नुकाय।
सपथ करैछ, हसैछ भौंहुसौं, 'धनुष' 'दोह' कहु, देल न जाय॥

[३५७]

नेकु उतै उठि बैठिये, कहा रहे गहि गेहु?
छुटी जाति नँह दी छिनक, महँ दी, सूखन देहु॥

'धनुष' रञ्च उठि बैसह ओमहर, बैसल छह की घर घोसिआय?
छुटइछ तिय-नह-लागल मेहदी, एको क्षणतौं रहक सुखाय॥

[३५८]

बाम तमासो करि रही, बिबस बारुनी सेय।
झुकति, हँसति, हँसि-हँसि झुकति, झुकि-झुकि, हसि-हँसि देय॥

मदिरा पीबि बिबस भै बाला 'धनुष' करै कौतुक हर्षाय।
झुकै, हँसै, हँसि-हँसिकें झुकै, झुकि-झुकि, हँसि-हँसि रहै ठठाय॥

[३५९]

हँसि-हँसि हेरति नवल तिय, मदके मद उमदाति ।
चलकि-चलकि बोलति वचन, ललकि-ललकि लपटाति ॥

मदिरा-मदमें उन्मादिनि तिय, अति हँसि-हँसिकें 'धनुप' लखैछ ।
उमकि-उमकिकें बात बजैअछि, ललकि-ललकिकें तन लपटैछ ॥

[३६०]

खलित वचन अधखुलित दृग, ललित स्वेद-कन-जोति ।
अरुन बदन-छवि मद-छकी, खरी छबीली होति ॥

वचन-स्फुट, अधखुजल आँखि ओ, 'धनुप' स्वेद-सुन्दर-कण-ज्योति ।
मदिरा-मदसौं मातलि अतिशय, अरुण-वदन-छवि सुन्दरि होति ॥

[३६१]

निपट लजीली नवल तिय, बहकि बारुनी सेय ।
त्यौं-त्यौं अति मीठी लगै, ज्यौं-ज्यौं ढीठ्यो देय ॥

अति लज्जावति, नवयुवती, मद-पीलक फुलिआयबमें आय ।
'धनुष' धृष्टता जौं-जौं तिय कर, तौं-तौं मीठ लाग अधिकाय ॥

[३६२]

बढ़ति निकसि कुच-कोर-रुचि, कढ़त गौर-भुज-मूल ।
मन लुटिगौ लोटनि चढ़त, चूँटत ऊँचे फूल ॥

कुच-मण्डल-छवि, बढ़ बाहर भै, सुमन ऊँच किछु तोड़क काल ।
पाँखुर गौर 'धनुष' भेल बाहर, त्रिवली चढ़ि मन भेल बेहाल ॥

३६३]

वाम धरीक निवारिये, कलित ललित अलि-पुंज ।
जमुना-तीर, तमाल-तरु, मिलित मालती-कुंज ॥

यमुना-तटपर तरु तमालसौं, मिलिकै बनल मालती-कुञ्ज ।
'धनुष' घड़ी भरि रौद गमायह, शोभित पथिक ! शुभग अलि-पुञ्ज ॥

[३६४]

चलित ललित श्रम-स्वेद कन, कलित अरुन मुख ऐन ।
बन-बिहार थाकी तरुनि, खरे थकाये नैन ॥

चपल सुभग श्रम-स्वेद-बुन्दसौं, अमित अरुण-मुख सुन्दर भेल ।
वन-विरहमें थाकलि तरुणी, 'धनुष' थकित मम दृगकें देल ॥

[३६५]

अपने कर गुहि आपु हठि, हिय पहिराई लाल ।
नौलसिरी औरे चढ़ी, मौलसिरीकी माल ॥

निज करसौं गुथि, हठसौं अपनहि, पहिरायल हिय 'धनुष' मुरारि ।
मौलसिरी से माला तनपर, औरे नव श्री देल पसारि ॥

[३६६]

ले चुभकी चलि जाति जित-जित जल-केलि अधीर ।
कीजत केसर नीरसे, तित-तित के सर-नीर ॥

जहँ-तहँ जाइछ जल-विहारमें, डुबकी मारति 'धनुष' अधीर ।
तहँ-तहँ सुन्दरि सरक सालिलकें, करइछ केसरि-मिश्रित नीर ॥

[३६७]

छिरके नाह नवोढ़-दृग, कर-पिचकी जल जोर ।
रोचन रँग लाली भई, बिय तिय-लोचन-कोर ॥

'धनुष' नवोढ़ा-दृगमें छिड़कल, कर-पिचकारीसौं पिय नीर ।
अन्य नारि-दृग-कोर भेल लखि, लाल-लाल जनु रंग अबीर ॥

[३६८]

हेरि हिंडोरे गगनतें, परी परी-सी टूटि ।
धरी धाय पिय बीचहीं, करी खरी रस लूटि ॥

पतिकें लखितहिं मचकी-नभसौं, 'धनुष' परी-सम खसलि विभोर ।
प्रीतम धाय धैल बिचहिंमें, अति रस लूटल तिय ले कोर ॥

[३६९]

बरजे दूनी हठि चढ़ै, ना सकुचै न सकाय।
टूटति कटि दुमची मचक, लचकि-लचकि बचि जाय॥

कोने मना, त्रिगुण हठ करइछ, 'धनुष' डराय न तथा लजाय।
कामिनि-कटि मचकैं मचकी-पर, लचि-लचि टुटबासौं बचिजाय॥

[३७०]

दोऊ चोर मिहीचनी—खेल, न खेलि अघाय।
दुरत हिये लपटायकै, छुवत हिये लपटाय॥

चोरानुकाँ खेल खेलाके, 'धनुष' दुहू नहि रञ्च अघाय।
हियसौं लपटि छपैछ परस्पर, छुबक समय हियमें लपटाय॥

[३७१]

लखि-लखि अँखियन अधखुलिन, आँग मोरि अँगराय।
आधिक उठि लेटत लटकि, आलस-भरी जँभाय॥

आध आँखिसौं 'धनुष' देखि तन, कामिनि करथि अँगैठीमोर।
आधा उठि, लटुआय पड़थि पुनि, अलसाइलि, हफिआथि अ-थोर॥

[३७२]

नीठि-नीठि उठि बैठिकै, प्यौ-प्यारी परभात।
दोऊ नींद भरे खरे, लागि गरे गिरि जात॥

दम्पति कष्ट-सहित उठि बैसे, प्रातःकाल 'धनुष' अलसाय।
अति निद्रामें रहक कारणे, गरदनि पकड़ि दुहू पड़ि जाय॥

[३७३]

लाज, गरब, आलस, उमंग, भरे नैन मुसकात।
राति रमी रति देति कहि, औरै प्रभा प्रभात॥

लाज, गर्व, आलस, उमंग-युत, 'धनुष' रहल अछि दृग मुसुकाय।
प्रातुक ई अपूर्व छबि, निशिमें—कैलगेल रति, कहै बुझाय॥

[३७४]

कुंज-भवन तजि, भवनको, चलिये नन्दकिसोर!
फूलति कली गुलाबकी, चटकाहट चहुँ ओर॥

कुञ्ज-भवनकें छोड़ि चलू झट, 'धनुष' भवन निज नन्दकिशोर!
कली गुलाबक फूलि रहल अछि, 'चट-चट' रव सुनि पड़ चहु ओर॥

[३७५]

नाहिं न, सीस साबित भई, लुटी सुखनिकी मोट।
चुप करिये, चारी करत, सारी परी सरोट॥

'नहि' न करह, शिर-सिद्ध भल छह, लुटलह सुखक मोटरी बाल!
चुपरह! साड़िक शिकुड़ब चुगली, 'धनुष' करै छह एहू काल॥

[३७६]

मो सो मिलवति चातुरी, तू नहिं भानति भेव।
कहे देत यह प्रगटही, प्रगट्यो पूस पसेव॥

हमरासौं चतुराइ करै छह; 'धनुष' न भेद कहैछह वाम!
तनक पसेना पूस-मासमें, प्रगट कहै रति केल ललाम॥

[३७७]

सही रँगीली रतजगे, जगी पगी सुख चैन।
अलसौं हैं, सौ हैं किये, कहैं हँसौहैं नैन॥

सखि! जगलिह व्रत-जागरणामें, छह सुख-चैन-भरलि ई ठीक।
नयन हास्य-मुख अलसाइलि ई, 'धनुष' सपथ खा कहलह नीक॥

[३७८]

यों दलमलियत निर्दई, दई! कुसुम-से गात।
कर धर देखो धरधरा, अजौं न उरते जात॥

प्रभु! निर्दई सुमन-सम तनकें, 'धनुष' मसोड़ि देल एहि रङ्ग।
हियपर कर धै लखह अखन धरि, हिय धड़कब नहि होइछ भङ्ग॥

[३७९]

छनक उघारति, छन छुवति, राखति छनक छुपाय ।
सब दिन पिय-खंडित अधर, दरपन देखत जाय ॥

क्षणहि उघारै, क्षणमे छूवै, देखे क्षणमें 'धनुष' नुकाय ।
पतिसौं खण्डित अधर मुकुरमें, लखितहिं सब दिन बीतल जाय ॥

[३८०]

और ओप कनीनकनि, गनी घनी सिरताज ।
मनी धनीके नेह की, बनी छनी पट लाज ॥

दृग-पुतरीक कान्ति अछि आने, तें सबमें मानल शिरताज ।
छनल लाज-पट 'धनुष' प्रीतमक, बनलि प्रेममणि ई ध्रुव आज ॥

[३८१]

कियो जु चिबुक उठायके, कम्पित कर भरतार ।
टेढ़ी-ये-टेढ़ी फिरति, टेढ़े तिलक लिलार ॥

कम्पित करसौं चिबुक उठाके, 'धनुष' तिलक पिय केलनि भाल ।
टेढ़ तिलक कैने ललाट-पर टेढ़ि-टेढ़ि भै विचरै बाल ॥

[३८२]

चैं गढ़ि गाड़े परीं, उपट्यो हार हिये न ।
आन्यो मोरि मतंग-मनु, मारि, गुरेरन मैन !

तुअ मन-मत्त-मतङ्ग घुराबल, 'धनुष' मदन गुलेलसौं मारि ।
से गोलो गड़ि गेल छाथि मे, हार-दाग हिय थिक न मुरारि !

[३८३]

पलनि पीक, अंजन अधर, धरे महावर भाल ।
आजु मिले सु भली करी, भले बने हौ लाल ॥

पलमें पीक अधरपर अञ्जन, 'धनुष' भालपर आरत धारि ।
आइ भेटलहुँ, कैलहुँ से भल, वेश बनल छी अहां मुरारि ॥

[३८४]

औरैं गांस गहे गहकि, रहे अधकहे बैन ।
देखि खिसौंहे पिय-नयन, किये रिसौंहे नैन ॥

ई कोधित अति गहल शत्रुता, जमि बैसलि, कह आधा बैन ,
'धनुष' प्रीतमक लज्जित लखि दृग, नारि रोष-युत कैलक नैन ॥

[३८५]

तेह तरेर त्यौर करि, कत करियत दृग लोल ?
लीक नहीं यह पीक की, स्रुति-मनि झलक कपोल ॥

'धनुष' कुपित भ्रू चढ़ा, आँखिकें-किये करैछह चपल अधोक ?
पीक-लीक नहि—थोक भालपर, झलक कर्ण-भूषण-मणिहीक ॥

[३८६]

बाल ! कहा लाली भई, लोयन-कोयन मांह ?
लाल ! तिहारे दृगनकी, परी दृगनमें छांह ॥

बाले ! दृग-कोणमें लाली, 'धनुष' कियैक गेलछह छाय ?
पड़ल अहाँक नयन-छाया अछि, हमरा नयन-बीच व्रजराय !

[३८७]

तरुन कोक-नद बरन बर, भये अरुन निसि जागि ।
वाहीके अनुराग दृग, रहे मना अनुरागि ॥

दृग नव लाल कमल सुन्दर-रंग-सम भेल जगलासौं भरि-रैन ।
'धनुष' वहो युवतीक प्रेममें, अनुरञ्जित अछि तोहर नैन ॥

[३८८]

केसर केसर-कुसमके, रहे अंग लपटाय ।
लगे जानि नख अनखुली, कत बोलति अनखाय ?

केसरि-पुहुप-पराग-तन्तु अछि, रहल नाह-तनसौं लपटाय ।
'धनुष' क्रोधिते ! बुझि नख-रेखा, कियै बजैछह तों झुझुआय ?

[३५९]

सदन-सदनमें फिरनकी, सद न फिरै हरिराय !
रुचे तितै विहरत फिरौ; कत विरहत उर आय ?

घर-घर घूमक बानि नहि छुटलह, 'धनुष' सुनह तोहर ब्रजराय !
रुचे जहाँ विहरैत फिरह तह; किय हियकें विहरावह आय ?

[३६०]

पट के ढिग कत ढाँपियत, सोभित सुभग सुवेख।
हद रद-छद छवि देत यह, सद रद-छदकी रेख ॥

पटकें निकट कियैक झपै छह ? शोभै सुन्दर 'धनुष' सुवेष ।
दशन-घाव-नव-रेखासौं ई, शोभा दैअछि अधर विशेष ॥

[३६१]

मो हू सों बातनि लगे, लगी जीह जिय नाँय ।
सोई लै उर लाइये, लाल ! लागियत पाय ॥

हमरहुसौं बतिआइत है हरि ! जकर जीभमें लागल नाम।
'धनुष' लगावह तौ हिय तकरहि, पैर परैछी हे घनश्याम !

[३६२

लालन लहि पाये दुरै, चोरी सौंह करै न ।
सीस चढ़े पनिहाँ प्रगट, कहैं पुकारें नैन ॥

पकड़ल गेलापर नहि छपइछ-चोरी, खेलहु सपथ हजार।
'धनुष' नयन-तान्त्रिक-सम शिर-चढ़ि, प्रगट कहैछ पुकारि अपार॥

[३६३]

तुरत सुरत कैसे दुरत ? मुरत नैन जुरि नीठि ।
डौंडी दै गुन रावरे, कहत कनौड़ी डीठि ॥

तुरत कैल रति छपै कोन परि ? दुरे, मिलै दृग 'धनुष' स-कष्ट।
लज्जित, दृग गुण अहंक दैछ कहि, ढोल बजाय श्याम ! सु-स्पष्ट।

[३६४]

मरकत-भाजन-सलिल-गत, इन्दु-कलाके वेख ।
झीन झगामें झलमलत, स्याम-गात-नख-रेख ॥

नील-मणिक बासन-बिच जलमें, जनु द्विज-शशि-प्रतिबिम्बक वेख ।
पातर जामा मध्य 'धनुष' से, श्यामल तनपर लह नख-रेख ॥

[३६५]

बेंदोये जानी परति, झँगा ऊजरे मांह ।
मृगनैनी लपटी जु हिय, बेनी उपटी बांह ॥

मृगनयनिक हियमें लपटैने, वेणी-चिन्ह पड़ल जे बाँहि ।
उज्वल जामा विचसौं ओहने, 'धनुष' जानि पड़इछ दृग-माँहि ॥

[३६६]

बाहीकी चित चटपटी, धरत अटपटे पाय ।
लपट बुझावत विरहकी, कपट भरे हू आय ॥

चित-चाह अछि ओकरे लागल, अटपट पति-पद 'धनुष' पड़ैछ ।
विरहक ज्वालाकें मिझवै लै, कपट भरल जौं, तदपि अबैछ ॥

[३६७]

कत बेकाज चलाइयत, चतुराईकी चाल ?
कहे देत यह रावरे, सब गुन, बिन गुन माल ॥

व्यर्थ कियैक करैछह तों हरि ! 'धनुष' विवाद चतुरता-पूर्ण ?
बिनु डोरीक माल कहि दै अछि, सबगुण अहँक, धन्य छी ! तूर्ण ॥

[३६८]

पावक-सो नैननि लगे, जावक लाग्यौ भाल ।
मुकुर होहुगे नेकुमें, मुकुर बिलोको लाल !

अहँक भालमें लागल आरत, लागै दृगमें आगि-समान ।
'धनुष' छणहिमे नढ़िजायब, तैं—दर्पणमें देखू दै ध्यान ॥

६

[३९९]

रही पकरि पाटी सु रिस, भरे भौंह, चित, नैन ।
लखि सपने पिय आन-रति, जगतहुँ लगत हिये न ॥

रहल पकड़िकें पलँग-पासिकें, भरल कोधसौं, भ्रू, मन, नैन ।
पर-तिय-रति-लखि पतिहिं स्वप्नमें, जगलहुँ, तिय, हिय 'धनुष' लगं न ॥

[४००]

रह्यो चकित चहुँधा चितै, चित मेरो मति भूल ।
सूर-उदै आये रही, दृगन साँझ-सी फूल ॥

प्रीतम चकित चतुर्दिशि देखथि; 'धनुष' न बिसरह हे चित ! मोर ।
सूर्योदयक समय तौं आयल, संध्या-सम फुलाय दृग-कोर ॥

पंचम शतक

[४०१]

अनत बसे निसिकी रिसनि, उर बरि रही बिसेखि ।
तऊ लाज आई झुकि, खरे लजौंहैं देखि ॥

पतिकें निशिमें अनत रहबसौं, तिय-हिय जरै कोधसौं बेश ।
'धनुष' देखि अति लज्जित पतिके, लाज उमड़ि आयल दृग-देश ॥

[४०२]

धुरँग महावर सौति-पग, निरखि रही अनखाय ।
पिय-अँगुरिन लाली लखे, खरी उठी लगि लाय ॥

सौतिन-पदक अरुण आरतकें, 'धनुष' लखै अनमनि भै नारि ।
देखि अरुणता पति-आँगुड़में, अति प्रज्वलित भेलि, हिय हारि ॥

[४०३]

कत सकुचत ? निधरक फिरौ, रतियो खोरि तुम्हैं न ।
कहा करौ जो जाय ये, लगौ लगौंहैं नैन ?

सकुचै छह की ? निर्भय घूमह; 'धनुष' दोष कनियों नहि तोर ।
लगनिहार दृग, लागि जाय जौं, तौं, तोहर ओहिमें की जोर ?

[४०४]

प्रानप्रिया हियमें बसै, नख-रेखा-शशि भाल ।
भले दिखायो आनि यह, हरि-हर-रूप रसाल ॥

हरि-सम प्राण-प्रिया हिय बसइछ, शिव-सम नख-रेखा-शशिभाल ।
'धनुष' आबिकें भने देखाबल, सुन्दर हरि-हर-रूप रसाल ॥

[४०५]

क्यों न चलै बलि रावरी, चतुराई की चाल ।
सु-नख हिये छिन-छिन नटत, अनख बढ़ावत लाल !

बलिहारी ! बलि सकत एते नहि, 'धनुष' कृष्ण ! चतुराई-चालि ।
क्षण-क्षण नटब, स-नख हिय तोहर, क्रोध बढ़ाय दैछ हिय सालि ॥

[४०६]

'न करु, न डरु' सब जगत कहु, कत बेकाज लजात ?
सौंहैं कीजे नैन जो, साँची सौंहैं खात ॥

'नहि कर, नहि डर'—सकल जगत कह, की लजाइछो व्यर्थ ? मुरारि !
'धनुष' खाइछो, सत्य सपथ यदि, सम्मुख नयन करू, भय टारि ॥

[४०७]

कत कहियत दुख देन को, रचि-रचि बचन अलीक ?
सबै कहाउ रहै लखे, भाल महाउर-लीक ।

'धनुष' कहैछह किये झूठ तों ? रचि-रचि दुखद बचन सब श्याम !
आरत-रेखा देखि कहब सब तुअ रहि जाइछ ठाम-क-ठाम !!

[४०८]

नख-रेखा सोहैं नई, अलसौं हैं सब गात ।
सौंहैं होत न नैन ये, तुम सौंहैं कत खात ?

नव नख-रेखा शोभि रहल अछि, अलसायल तन 'धनुष' समस्त ।
नयन सेहो सम्मुख नहि होइछ, सपथ खाइ तों की भे व्यस्त ?

[४०९]

लाल ! सलोने अरु रहे, अति सनेहसौं पागि ॥
तनक कचाई देत दुख, सूरन-लौं मुँह लागि ॥

'धनुष' कृष्ण ! लावण्य-युकली, अति सनेहसौं सानल पूर्ण ।
किछुओ काँच अवश दुख दे अछि, मुखमें लगइत ओलक चूर्ण ॥

[४१०]

कत लपटैयत मो गरे ? सो न जु, ही निसि सैन ।
जिहि चम्पक-बरनी किये, गुल्लाला-रँग नैन ॥

मम गरसौं लपटैत किये छह ? ओ हम नहि जे सूतलि रैन ।
जे चम्पकवर्णी कैलक अछि, 'धनुष' रंग गुल्लाला नैन ॥

[४११]

पल सोहैं पगि पीक रँग, छल सोहैं सब बैन ।
बल सौंहैं, कत कीजियत, अलसौंहैं ये नैन ॥

पल, पीकक रंगसौं रञ्जित अछि, छलसौं भरल 'धनुष' तुअ बैन ।
बलसौं किये करैछह सम्मुख, अलसायल ई तों दुहु नैन ॥

[४१२]

भये बटाऊ नेह तजि, बादि बकति बेकाज ।
अलि अब देत उराहनौं, उर उपजति अति लाज ॥

'धनुष' प्रीति तजि भेल बटोही, तनिकर चर्चे अकारण आब ।
देत उलहनो हुनकासौं, सखि ! उपजै हिय अति लज्जा-भाव ॥

[४१३]

छभर भरयो तुव गुन-कननि, पकयो कपट कुचाल ।
क्यौंधौं दारयो-लौं हियो, दरकत नाहि न लाल !

गुण-दानासौं भरल नीकसँ, कपट, कुचालि पकावल पाटि ।
'धनुष' अनार-समान हमर हिय, हे हरि ! जाइछ किय नहि फाटि ?

[४१४]

मैं तपाय त्रय-तापसों, राख्यो हियो-हमाम ।
मति कबहुँ आवैं इहाँ, पुलक पसीजे स्याम ॥

हृदय-स्नान-गेह हम राखल, तीन तापसौं 'धनुष' तपाय ।
पुलक, पसेनासौं तर भै सखि ! जौं कदाच आबथि ब्रजराय ॥

[४१५]

आजु कछु औरै भये, छये नये ठिकै न ।
चितके हितके चुगल ये, नितके होहि न नैन ॥

'धनुष' सजलि ई नव सज-धजसौं, आइ आन तरहक भै गेलि ।
चित्त, प्रेम-चुगिलाह नेत्र, नहि-अछि सब दिन-सन, अछि किछु बेलि ॥

[४१६]

फिरत जु अटकत कटनि-बिनु, रसिक ! सु रस न, खियाल ।
अनत-अनत नित-नित हितन, कत सकुचावत लाल !

रसिक ! बिना प्रेमक जे अटकह, की नहि छह किछु रसक विचार ?
जहँ-तहँ प्रेम नित्य प्रतिकै हरि ! मोहि लजबह की बारम्बार ?

[४१७]

जो तिय तुम मन भावती, राखी हिये बसाय ।
मोहि खिझावति दृगनि ह्वै, वहियै उझकति आय ॥

जे तिय तोरा परम प्रीय छह, हियमें धैलह 'धनुष' बसाय ।
तुअ दृग-पथ है बैह आबिकै, हुलकी दै खिसिआबै हाय !

[४१८]

मोहि करत कत बावरी ? किये दुराव दुरै न।
कहे देत रँग रातके, रँग निचुरत-से नैन ॥

हमरा किये बताहि करैछह ? 'धनुष' छपौने छपि न सकैछ।
रङ्ग-चुवैत-समान नयन तुअ, रातुक रङ्ग सकल कहि देछ ॥

[४१९]

पटसों पोंछि परे करो, खरी भयानक भेख।
नागिनि ह्वै लागति दृगनि, नागबेलिकी रेख ॥

पटसौं पोछि फराक करह झट, महा भयानक भेष लगैछ।
पानक रेखा 'धनुष' आँखिमें, नागिनि-सन लगइत, दुख देछ ॥

[४२०]

ससि-बदनी मोको कहत, हौं समुझी निजु बात।
नैन-नलिन प्यो रावरे, न्याय निरखि नै जात ॥

सत्य कथा हम बुझल, कहैछी—'शशि–वदनी'–हमरा, नहि लाथ।
'धनुष' जाहिसौं अहँक कमल-दृग, न्याय बूझि कुम्हलायल नाथ !

[४२१]

दुरै न निघरघटौ दिये, या रावरी कुचाल।
विष-सी लागति है बुरी, हँसी खिसीकी लाल !

नहि छपि सकत कुचालि अहँक ई, देलहु 'धनुष' प्रमाण हजार।
लागै हरि ! निर्लज्ज हँसी तुअ, विष-समान अधलाह अपार ॥

[४२२]

जिहि भामिनि भूषन रच्यौ, चरन-महाउर भाल।
वही मनो अँखिया रँगी, ओठनके रँग लाल !

जे तिय पद-आरतसौं रचलक, 'धनुष' भाल-भूषण अवदात।
रचल सैह निज अधर-रङ्गसौं, हे हरि ! अहँक आँखि रमणीय ॥

[४२३]

चितवनि रूखे दृगनि की, बिन हाँसी मुसकानि।
मान जनायो मानिनी, जानि लियो पिय जानि ॥

नीरस दृगसौं हेरब ओ पुनि, बिहुँसब, बिनु हासक, उच्छ्वास।
'धनुष' मानिनी मान जनावल, पटु पिय पाबल मानाभास ॥

[४२४]

बिलखी लखै खरी-खरी, भरी अनख बैराग।
मृगनैनी सैन न भजै, लखि बेनी के दाग ॥

भरलि, उदासीनता, क्रोधसौं, 'धनुष' ठाढ़ि लख व्याकुलि बाल।
वेणी-दाग देखि पति-तनपर, जाय सेजपर नहि, हिय शाल ॥

[४२५]

हँसि हँसाय उरलाय उठि, कहि न रुखौंहै बैन।
जकित थकित-से ह्वै रहे, तकत तिलौंछे नैन ॥

हँसइ, हँसाबइ, उठि उर लगबइ, 'धनुष' कहुन नहि नीरस बात।
तुअ दृग देखि तेलसौं पोछल, शिथिल, श्रमित-सम अछि पति-गात ॥

[४२६]

रसके-से रुख ससिमुखी, हँसि-हँसि बोलति बैन।
गूढ़ मान मन क्यों रहै, भये बूढ़-रँग नैन ?

प्रेमक कम थे, हँसइत-हँसइत, 'धनुष' कहै शशिवदनी बैन।
मनमें मान गुप्त नहि रहि सक, बीरबहुटी रँग भेल नैन ॥

[४२७]

मुँह मिठास, दृग चीकने, भौंहैं सरल सभाय।
तऊ खरे आदर खरो, खिन-खिन हियो सकाय ॥

मधुर बोल मुख, दृग चिक्कन अछि, भौंहु सोझ, सुन्दर अछि भाव।
अति आदर करैत लखि तैयो, छण-छण शंका हियमें आव ॥

[४२८]

पति-रितु-अवगुन-गुन बढ़त, मान माहको सीत ।
जात कठिन ह्वै अति मृदौ, रवनी-मन, नवनीत ॥

'धनुष' मान ओ माघ-जाड़में, पति-अवगुण, गुण ऋतुक बढ़ैछ ।
अति कोमल तिय चित कठोर हो, अति मृदु कठिन मक्खनो हैछ ।

[४२९]

कपट सतर भौंहैं करी, मुख सतरौंहैं बैन ॥
सहज हँसौंहैं, जानिकै, सौंहैं करति न नैन ॥

छलसौं टेढ़ भौंहकें कैने, मुखसौं बाजै क्रोधित बैन ।
सहजहिं हँसक स्वभाव जानिकें, 'धनुष' न पति-सम्मुख कर नैन ॥

[४३०]

सोवति लखि मन मान धरि, ढिग सोयो प्यौ आय ।
रही सपन की मिलन मिलि, तिय हियसों लपटाय ॥

मानिनकें लखि सुतलि मानकें, 'धनुष' आबि लग सुतला पीय ।
स्वप्न-मिलन मिलि रहलि प्रियतमा, लपटि स-प्रेम प्रीतमक हीय ।

[४३१]

दोऊ अधिकाई भरे, एकै गौं गहराय ।
कौन मनावै को मनै, मानै मति ठहराय ॥

दुहु निज भरल बड़प्पनसौं छथि, 'धनुष' डटल छथि एके दाव ।
के ककरा मनवै; के माने ? मति माने मानहिक प्रभाव ॥

[४३२]

लखौ लसन ह्वै है सुफल, आतप-रोष निवारि ।
बौरी बारी आपनी, सींचि सुहृदता-बारि ॥

हैत सफल मन-सुमन लगल जे, कोपातपकें 'धनुष' निवारि ।
निज मजरल फुलवाड़ीमें तों, सींचह विमल प्रेम-जल नारि !

[४३३]

गह्यौ अबोलो बोलि प्यौ, आपुं पठै बसीठि ।
दीठि चुराई दुहुनकी, लखि सकुचौंही दीठि ?

स्वयं पठावल पिय प्रति दूती, पतिकें देखि मौन गहि लेल ।
'धनुष' लजेल दुहुक दृग, तिय लखि, निज दृग नारि औढ़कै देल ॥

[४३४]

मान करत बरजति न हौं, उलटि दिवावति सौंह ।
करी रिसौंही जांयगी, सहज हँसौंही भौंह ॥

मान करैत मना न करैछी, 'धनुष' सपथ दैछी उलटाय ।
किन्तु सहज हँस-मुख भ्रूकें की, के सकबह स-रोष, सुख पाय ?

[४३५]

खरी पातरी कानकी, कौन बहाऊ बानि ?
आक-कली न रली करै, अली ! अली जिय जानि ॥

कानक पातरि 'धनुष' अधिक छह, कान बहकनी थिक ई बानि ?
आक-कलीसौं नहि बिहार कर—भ्रमर, तोँह सखि ! निश्चय जानि ॥

[४३६]

रुख रुखे मिस रोष मुख, कहति रुखौंहैं बैन ।
रुखे कैसे होत ये, नेह चीकने नैन ?

'धनुष' रुच्छ बाघ्दासौं क्रोधक, बाज लाथकें नीरस बैन ।
किन्तु कहह ई रुच्छ कोना हो, नेह भरल चिक्कन तुअ नैन ?

[४३७]

सौंहें हूं चाह्यौ न तैं, केती द्याई सौंह ।
ये हो क्यौं बैठी किये, ऐंठी-ग्वैंठी भौंह ?

देल सपथ हम कतबो किन्तु न, तों मम सम्मुख तकलह रञ्च ।
'धनुष' भौंहुकें ढेढ़ि-मेढ़िकें, छह किऐक बैसलि भी सञ्च ?

[४३८]

एरी, या तेरी दई ! क्योंहू प्रकृति न जाय।
नेह भरेही राखिये, तू रुखिये लखाय॥

अरे दव ! तोहर स्वभाव ई, 'धनुष' न कोनहु विधि बदलैछ।
प्रेम भरल हियमें रखलहुँ पर, तुअ मन नीरस बूझि पड़ैछ॥

[४३९]

विधि विधि के निकरै टरै, नहीं परे हू पान।
चितै कितै तै लै धरो, इतो इतै तनु मान?

विधिक विधानहिसौं सकइछ हटि, पीरो पड़ने हो नहि दूर।
कहँसौं पलेक मान नव तनमें, 'धनुष' लजइ, लै भरलह पूर?

[४४०]

तो रस-राच्यौ आन-बस, कहै कुटिल-मति, कूर।
जीभ निबौरी क्यों लगे, बौरी ! चाखि अँगूर?

हे बताहि ! पति प्रेम-पूर्ण छथि, क्रूर-कुटिल-मति पर-बस बाज।
जीभ चाखि अंगूर, नीमपर—'धनुष' कोना लागै ? हो लाज॥

[४४१]

हा, हा ! बदन—उघारि दृग, सफल करै सब लोग।
रोज सरोजनि पै परै, हँसी ससीकी होय॥

अहह ! देह निज मुख उघारि किछु, पुरे सकल लोकक दृग-आश।
कुहरि-कुहरि कमलिनि सब कानै, 'धनुष' शशिक हो घर-घर हास॥

[४४२]

गहिली ! गरब न कीजिये, समय सोहागहि पाय।
जियकी जीवन जेठ जो, माह न छाँह सोहाय॥

तों यौवन, पति-प्रेम पाबिकँ, हे बताहि ! नहि करह गुमान।
जिय-जीवन जे जेठ-छाँह हो, 'धनुष' माघमें से हर प्राण॥

[४४३]

कहा लेहुगे खेलमें ? तजौ अटपटी बात !
नेकु हँसौंही हैं भई, भौंहैं सौंहैं खात॥

एहि खेलमें की पैबह तों ? 'धनुष' तजह अटपट ई बैन।
लाख सपथ खैलापर, हँस-मुख—रुख भेल भ्रू, स्वयं हँसै न॥

[४४४]

सकुचि न रहिये स्याम सुनि, ये सतरौंहैं बैन।
देत रचौंहैं चित कहे, नेह नचौंहैं नैन॥

'धनुष' क्रोध-युत वचन सुनि ई, कै सङ्कोच रहू नहि श्याम !
प्रेम-चपल-दृग देखा दैत अछि, सानुराग चितकें अभिराम॥

[४४५]

चलो चलैं छुटि जायगी, हठ रावरे सँकोच।
खरे चढ़ाये ही तबै, आये लोचन लोच॥

चलु, अहँक चलने छुटि जेतनि—हठ, सङ्कोच मध्य पड़ि श्याम !
'धनुष' तखन छल चढ़ल आँखि अति, ऐल मृदुलता अखन ललाम॥

[४४६]

अनरस हूँ रस पाइये, रसिक ! रसीली-पास।
जैसी साँठेकी कठिन, गाँठौ खरी मिठास॥

रसिक ! विरस भेलहुमें पाबिय, तिय रसवती पाबि, रस नीक।
जनु कुसियारक कठिन गेंठमें, 'धनुष' मधुरता रहै अधीक॥

[४४७]

क्योंहू सह मात न लगे, थाके भेद-उपाय।
हठ-दृढ़-गढ़-गढ़वै छ चलि, लीजै सुरँग लगाय॥

कोनहु शहें मातु नहि होइछ, भेल विफल सब भेद-उपाय।
हठ-दृढ़-गढ़-स्वामिनिकें जीतू, अपनहि 'धनुष' सुरङ्ग लगाय॥

[४४८]

वाही निसितैं ना मिटो, मान ! कलहको मूल ।
भले पधारे पाहुने ! ह्वै गुडहरको फूल ॥

ओही रातिसौं नष्ट भेल नहि, कलहक मूल 'धनुष' ई मान ।
भै अड़हुलक फूल हे पाहुन ! पैलहुँ भने, छिटो सन्मान ॥

[४४९]

आयें आप भली करी, मेटन मान-मरोर ।
दूरि करौ, यह देखि है, छला छिगुनियां-छोर ॥

भल कैलहुँ, पैलहुँ अपने जे, 'धनुष' मेटावै मान-मड़ोर ।
हरि ! फेकू ई औंठी, देखति, अछि लागल कनगुड़िया-छोर ॥

[४५०]

हम हारी कै कै हहा, पायन पारयौ प्यौरु ।
लेहु कहा अजहूँ किये, तेह तरेरे त्यौर ?

हम हा ! हारल, हाय ! हाय !! कै, तुअ पद पतिकें 'धनुष' लोटाय ।
कोपे आबहुँ तनने छह भ्रू, पहिलौं की नीं रहलिह पाय ?

[४५१]

लखि गुरुजन-बिच कमलसौं, सीस छुवायो स्याम ।
हरि-सनमुख करि आरसी, हिये लगाई बाम ।

लखि गुरुजनक बीचमें तियकें, कमल छुआयल शिरसौं श्याम ।
'धनुष' हरिक सम्मुखकें दर्पण, हँसिकें हृदय लगौलक बाम ॥

[४५२]

मन न मनावन को करै, देत रुठाय-रुठाय ।
कौतुक लागे प्रिय-प्रिया खीझहु रिझवति जाय ॥

'धनुष' मनावक मन नहि होइछ, पुनि-पुनि पति—तियकें रुसबैछ ।
पतिक कौतुकक हेतु प्रियतमा, रिझयै, खिसियाकें, सुख लैछ ।

[४५३]

सकत न तुव ताते बचन, मो रसको रस खोय ।
खिन-खिन औटे खीर-लौं, खरो सवादिल होय ॥

तोहर तपत बचन नहि सोखत, हमर प्रेम-रसकें हे वाम !
छण-छण औंटल दूधक सम हो, 'धनुष' अधिक स्वादिष्ट, ललाम ॥

[४५४]

त्यों अदब इठलाहटौ ! उर उपजावति त्रास ।
दुसह संक विषको करै, जैसे सोंठि-मिठास ॥

अति आदरसौं 'धनुष' ऐंठबो, हियमें भय उत्पन्न करैछ ।
सोंठिक जाहि प्रकार मधुरता, दुसह विषक शङ्काकें दैछ ॥

[४५५]

रात-दिवस हौंसे रहति, मान न ठिकु ठहराय ।
जेतो औगुन ढूंढिये, गुनै हाथ परिजाय ॥

मान करक आवेश राति-दिन, बनलोपर नहि नीक लगैछ ।
अवगुण हुनक अनेक तकैछी, 'धनुष' गुणहिपर हाथ पड़ैछ ॥

[४५६]

सतर भौंह, रूखे बचन, करत कठिन मन नीठि ।
कहा करौं, ह्वै जाति हरि—हेरि, हँसौंही डीठि ॥

करी कठिनसौं भौंहु टेढ़ ओ, मन कठोर पुनि नीरस बैन ।
'धनुष' करू की ? हरिकें लखितहिं, मुदित विकसि जाइत अछि, नैन ॥

[४५७]

मोहीको छुटि मान गो, देखतही ब्रजराज ।
रही घरिक-लौं मान-सी, मान करेको लाज ॥

'धनुष' देखितहिं मनमोहनकें, हमरहि मनक मान छुटि गेल ।
एक घड़ी धरि मान करक-सन, मान करैक लाज चित भेल ॥

[४५८]

दुई निगोड़े नैन ये, गहै न चेत-अचेत।
हौं कपुकैं रिसहे करौं, ये निसिखे हँसि देत॥

'धनुष' जरौ बेबूझ नयन ई, भै अचेत, नहि चेत करैछ
एकरा रुष्ट करी जौं कसिकै, ताहूपर ई मूड़ हँसैछ॥

[४५९]

तुहूँ कहै हौं आप हू, समुझति सबै सयान।
लखि मोहन जो मनु रहै, तौ राखौं मन मान॥

जहाँ कहैछी, 'धनुष' हमहु तौं, हुनक बुझो सब चतुर विचार
हरिकें लखि मन यदि थिर रह, तौं—मनमें करी मान-उपचार॥

[४६०]

मोहि लजावत निलज ये, हुलसि मिलत सब गात।
भानु-उदयकी ओस-लौं, मान न जान्यौं जात॥

ई निलज्ज अंग सब हुलसित, मिलि जाइछ, हमरा लजबैछ
सूर्योदय भेने ओसक-सम, 'धनुष' मान नहि बूझि पड़ैछ॥

[४६१]

खिचे मान अपराध तें, चलि गे बढ़े अचैन।
जुरत दीठि तजि रिस खिसी, हँसे दुहुन के नैन॥

मान-दोष-विष तनल रहल दृग, 'धनुष' चैन चितसौं चलगेल
दृग-सौं-दृग मिलि, क्रोध, लाज तजि, दुहुक नयन विवश हँसि देल॥

[४६२]

नभ लाली, चाली निसा, चटकाली धुनि कीन।
रति पाली आली! अनत, आये बनमाली न॥

लाल भेल नभ, राति गेल बिति, रवकँ खगगण नभ-पथ गेल
'धनुष' सखी! नहि ऐला प्रीतम, पालन-प्रेम आन-घर केल॥

[४६३]

दच्छिन पिय ह्वै बाम बसि, बिसराई तिय-आन।
एकै बासरके बिरह! लागे बरष बिहान॥

दक्षिण-पति भै, कुलटा-वश छी, 'धनुष' बिसरि देल्हुँ तिय-टेक।
एके दिनुक बिरह देलू चलि, बीतै वर्षक सम दिन एक॥

[४६४]

आपु दियो मन फेरि लै, पलटै दीन्ही पीठि।
कौन चाल यह रावरे, लाल! लुकावत दीठि?

अपनहि दै पुनि फेरि लेल मन, बदलामें देलहुँ अहँ पीठि।
'धनुष' अहँक ई कोन चालि अछि, श्याम! चोराय रहल छी दीठि?

[४६५]

मोहि दियो, मोरो भयो, रहत जु मिलि जिय साथ।
सो मन बाँधि न सौंपिये, पिय! सौतिन के हाथ॥

हमरा देलहुँ, हमर भेल से, आय हरै ओ मिलि मम प्राण।
'धनुष' ओहि मनकँ न बान्हिकै, सौंपिय सौतिन-कर मतिमान॥

[४६६]

मारयो मनुहारिन भरी, गारयो खरी मिठाहिं।
वाको अति अनखाहटौ, मुसक्यैयाहट बिन नाहिं॥

अछि दुलारसौं भरल मारयो, तनिक गारियो मधुर लगैछ।
प्रियतमाक सखि! क्रोधित बजबो, बिनु बिहुसनिक 'धनुष' नहि हैछ॥

[४६७]

तुम सौतिन देखत दई, अपने हियतें लाल!
फिरत डह-डही सबनिमें, वही मरगजी माल॥

तौं सौतिनकें लखितहि देलह, 'धनुष' अपन गर-माल मुरारि!
ओ मलिनो माला हियधै कें, प्रमुदित, विचर, सखीमें नारि॥

[४६८]

बालम बारी सौतिके, छनि पर-नारि-बिहार।
भो रस, अनरस, रिस, रली, रीझि, खीझि इक बार॥

सुनि सौतिनक बारमें रुजाभिक, 'धनुप' आन-तिय-संग-बिहार।
धके बेरि भेल—सुख, दुख ओ क्रोध, हँसी, मुद, शोक अपार॥

[४६९]

सुवर सौति-बस पिय सुनत, दुलहिन दुगुन हुलास।
लखी सखी तन दीठि करि, सगरब, सलज, सहास॥

पतिकें सुभग सौतिनक वस सुनि, कनियाँकें दोबर मुद भेल।
स-लज, स-हास्य, स-गर्व नयनसौं, 'धनुप' सखी-दिशि से लखि देल॥

[४७०]

हठि हित करि प्रीतम लियो, कियो जु सौति सिंगार।
अपने कर मोतिन गुथ्यो, भयो हरा हर-हार॥

हठ, सनेह-बस लै प्रीतमसौं, 'धनुप' कैल सौतिन श्रृङ्गार।
निज कर-गाँथल मोति-माल लखि, भेल नारि-गरमें हर-हार॥

[४७१]

बिथुरयो जावक सौति-पग, निरखि हँसी गहि गाँस।
सलज हँसौंही लखि, लियो—आधी हँसी उसाँस॥

आरत पसरल सौतिन-पद लखि, 'धनुप' डाहसौं कैलक हाँस।
सौतिनक लज्जित हँसैत लखि, आधे हँसिक घीच लेल साँस॥

[४७२]

बाढ़त तो उर उरज-भर, भरि तरुनई बिकास।
बोझन सौतिनके हिये, आवत रूँधी उसास॥

तोरा उरपर तरुणताक बढ़, 'धनुप' बिकास भरल कुच-भार।
तकर भारसौं दबल अबै अछि, सौतिन-हिय-उच्छ्वास अपार॥

[४७३]

छोटि परोसिनि ईंठि ह्वै, कहे जु गहे सयान।
सबै सँदेसो कहि कह्यौ, मुसकाहटमें मान॥

धृष्ट पड़ोसिन कहल मित्र भै, जे छल कहक, चतुरता-संग।
सब समाद कहि कहल 'धनुप' जे-बिहुँसब नहि थिक मानक अंग॥

[४७४]

चलत देत आभार सुनि, वही परोसिहि नाह।
लसी तमासेकी दृगनि, हाँसी आँसुन माँह॥

चलक समय गृह-भार देत सुनि, पतिकें जार-पड़ोसिक हस्त।
दृगमें नोरक बीच कौतुकक, 'धनुप' हँसी लस, तिय-हिय मस्त॥

[४७५]

छला परोसिन हाथतें, छल करि लियो पिछानि।
पियहि दिखायो लखि बिलखि, रिस-सूचक मुसकानि॥

औंठा चीन्हि, पड़ोसिन-करसौं, 'धनुप' लेल छ ठकें, तिय कानि—।
क्रोध भरल बिहुँसनिक संग लखि, देल देखाय नाहकें आनि॥

[४७६]

रहिहैं चंचल प्रान ये, कहि कौनकी अगोट?
ललन चलनकी चित धरी, कल न पलनकी ओट॥

कह, रहत ई ककर ओटमें? चञ्चल प्राग 'धनुप' हे घात!
चलक कथा पति चितमें धैलनि, कल न पड़े, हे ! हिं दृग-कात॥

[४७७]

पूस-मास सुनि सखिनसों, साँई चलत सवार।
गहि कर बीन प्रवीन तिय, राग्यो राग मलार॥

सुनि सखीसौं, पूस-मासमें—'जैता पति परात परदेश।'
कर लै बीण चतुर तिय लागलि, गाबै राग मलार विशेष॥

[४७८]

ललन चलन सुनि चुप रही, बोली आपु न ईठि।
राख्यो गहि गाढ़े गरे, मनो गलगली डीठि॥

पतिक चलब सुनि, सखी! भेलि चुप, 'धनुष' न किछु बाजलि, दुख-पाबि।
यथा पकड़ि रखने हो थलसौं, पति डबडब द्रुग, तिय-गर-दाबि॥

[४७९]

बिलखी डबकौंहैं चखनि, तिय लखि गमन बराय।
पिय गहबर आये गरे, राखी गरे लगाय॥

डबडबेल द्रुगसौं व्याकुलि लखि—तियकें, पति जायब तजि देल।
पिय गदगद भे 'धनुष' प्रेम-बस, गर लगाय तियकें लै लेल॥

[४८०]

चलत-चलत-लौं लै चले, सब सुख संग लगाय।
ग्रीषम-बासर, सिसिर-निशि, पिय मो पास बसाय॥

चलितहिं-चलितहिं, संग लगाकें, लै गेलाह सब सुखकें हाय!
'धनुष' ग्रीष्म-दिन, शिशिर-रातिकें, हमरा लग गेलाह बसाय॥

[४८१]

अजौं न आये सहज रँग, बिरह दूबरे गात।
अबही कहा चलाइयत, ललन! चलनकी बात?

'धनुष' विरहसौं दूबर तनमें, सहजो कान्ति अखन नहि भेल।
प्रीतम! चलक चर्चे दुःखद ई, अहाँ चलाय अखन की देल?

[४८२]

ललन चलन सुनि पलनमें, अँसुअन झलके आय।
भई लखाइ न सखिन हूँ, झूठे ही जमुहाय॥

पतिक चलक बात सुनि पलमें, झलकल 'धनुष' नोर किछु आबि।
किन्तु न बूझि पड़ल सखियहुँकें, मिथ्या हाफिक कारण पाबि॥

[४८३]

चाह भरी, अति रस भरी, बिरह-भरी सब बात।
कोटि सँदेसे दुहुँनके, चले, पौरि-लौं जात॥

प्रेम-पूर्ण, अति सरस, विरहसौं, 'धनुष' भरल छल, दुहुक बात।
चलल समाद परस्पर कोटिक, जाइत-जाइत ड्यौढ़िक कात॥

[४८४]

मिलि-मिलि, चलि-चलि मिलि चलत, आँगन अथयो भानु।
भयो मुहूरत भोरके, पौरिहि प्रथम मिलानु॥

मिलिमिलि, चलिचलि पुनि मिलि, पुनि चलि, 'धनुष' आँगनहि रवि डुबिगेल।
यात्रा-समय भोरहुक भेने, द्वारे प्रथम वास-थल भेल॥

[४८५]

दुसह बिरह, दारुन दसा, रह्यौ न आन उपाय।
जात-जात जिय राखिये, पियकी बात सुनाय॥

विरह-दशा दारुण, दुस्सह अछि, रहल न कोनो आन उपाय।
'धनुष' गमन-मुख प्राणक रक्षा, केल जाय पति-कथा सुनाय॥

[४८६]

पजर्यो आगि वियोगकी, बह्यौ विलोचन नीर।
आठो जाम हियो रहै, उड्यौ उसास समीर॥

विरह-वह्नि प्रज्वलित भेल भे, 'धनुष' बहैछ नयनसौं नोर।
आठो पहर उड़ै अछि हियमें, विरह-उसास-बसात अथोर॥

[४८७]

पलनि प्रगटि, बरुनीन बढ़ि, छन कपोल ठहरात।
अँसुवा परि छतिया छनक, छनछनाय छपि जात॥

पलमें प्रगटि, पिपनीमें बढ़ि, छण-हित थम्है गालपर आय।
पुनि पड़ि छाती 'धनुष' छणहिमें, छनछनायकें नोर सुखाय॥

[४८८]

करि राख्यौ निरधारि यह, मैं लखि नारी-ज्ञान।
वहै वैद, औषधि वहै, वहै जु रोग, निदान॥

'नारी'-ज्ञान देखि ई निश्चय, कें राखल हम 'धनुष' महान।
वेह वैद्य; औषधो वेह थिक; वेह रोग थिक; वेह निदान॥

[४८९]

मरिबेकौ साहस ककै, बढ़ै विरहकी पीर।
दौरति ह्वै समुहैं ससी, सरसिज, सुरभि-समीर॥

'धनुष' मरक साहस करैत अछि, बढ़ै विरह-दुख जखन शरीर।
दौड़ति अछि सम्मुख भे लखिकें, सोम, सरोरुह, सुरभि-समीर॥

[४९०]

ध्यान आनि ढिग प्रानपति, मुदित रहति दिन-राति।
पलक कँपति, पुलकित पलक पलक पसीजति जाति॥

आनि स्व-पतिकें निकट ध्यानमें, 'धनुष' रहैछ मुदित दिन-रैन।
क्षणहि काँप, छणमें पुलकित हो, क्षणमें स्वेद-पूर्ण, नहि चैन॥

[४९१]

सकै सताय न विरह-तम, निसि-दिन सरस सनेह।
रहै वहै लागी दृगनि, दीप-सीखा-सी देह॥

'धनुष' विरह-तम सता सकै नहि, रस-स्नेह दुनै दिन-रैन।
दीप-शिखा-सम तन लागल रह—नायक दृगसौं, पावथि चैन॥

[४९२]

विरह-जरी लखि जीगननि, कही न वहि कै बार।
अरी! आय भजि भीतरै, बरसत आजु अँगार॥

विरह जरलि तिय, भगजुगनीकें—लखि, कहलक सखिसौं कै बार।
'धनुष' भागि भीतर सखि! आबह, आगि आइ बर्षैछ अपार॥

[४९३]

अरी! परै न करै हियो, खरै जरै पर जार?
लावति घोरि गुलाबसौं—मिलै, मलै घनसार॥

सखि! कराक नहि किये करैछह? अति जरलो हियकें की जार?
चन्दन, कपुर, गुलाब घोरि की; 'धनुष' लगाकें देह पजार?

[४९४]

कहै जु वचन वियोगिनी, विरह-विकल बिललाय!
किये न केहि अँसुआ सहित, सुआ सु बोल सुनाय॥

'धनुष' कहल जे कथा वियोगिनि, विरह-विकलतासौं बहलाय।
कोन न ककरा नोर-सहित ओ—सुगा, सुन्दर शब्द सुनाय?

[४९५]

सीरे जतननि सिसिर-रितु, सहि बिरहिन तन-ताप।
बसिबेको ग्रीषम दिनतु, परयो परोसिनि पाप॥

'धनुष' शिशिरमें शीत-यत्नसौं, सहल विरहिणिक देहक उधाल।
ग्रीष्मक दिनमें पड़ोसिनक हित, रहबा भेल कठिन, विकराल॥

[४९६]

पिय प्रानकके पाहरू, करति जतन अति ताप।
जाकी दुसह दसा परयो, सौतिन हू संताप॥

जकर दशा दुस्सह लखि होइछ, सौतिनिहु क मन दुःख अपार।
पतिक प्राण-रक्षिणी बूझि, कर—"धनुष" यत्न सौतिनो हजार॥

[४९७]

आड़े दै आले बसन, जाड़े हू की राति।
साहस कै-कै नेह-बस, सखी सबै ढिग जाति।

गीतल चीरक ओट 'धनुष' कै, परम शीत-मय जाड़क रैन।
प्रेम-विवश विरहिणि-लग सखि सब, कै-कै साहस आथि, न चैन॥

[४९८]

सुनत पथिक मुँह माह-निशि, लुवैं चलत वहि गाम ।
बिन बूझे, बिनही कहे, जियत बिचारी बाम ॥

पथिकक मुहसौं, माघक निशिमें, लूक चलौ अछि सुनि निज गाम ।
'धनुष' बिना बुझनहि, बिन कहनहि, बुझल जियैछथि पति मम बाम ॥

[४९९]

इत आवति, चलि जाति उत—चली, छ-सातक हाथ ।
चढ़ी हिंडोरे-सी रहै, लगी उसासनि साथ ॥

'धनुष' उसास-श्वास लागल-सन, मचकी ऊपर चढ़लि समान ।
इत आबै उत जाय झूलि पुनि, डुलित हाथ छव-सात प्रमाण ॥

[५००]

(सो०) बिरह सुखाई देह, नेह कियो अति डहडहे ।
जैसे बरसे मेह, जरै जवासो, ज्यों जमै ॥

'धनुष' बिरह, तनकें झामरकें, हरियर कैलक प्रेमक फूल ।
यथा मेघ-बर्षने जवासक, जरै डारि, जमि जाइछ मूल ॥

कुसुम शतक

[५०१]

(सो०) आठो याम अछेह, दृग जु बरत बरसत रहत ।
ज्यों बिजुरी जनु मेह, आनि यहाँ बिरहा धर्यौ ॥

आठो पहर 'धनुष' अविरत ई, नयन जरैछ तथा वर्षैछ ।
यथा बिरह चपला-युत घनकें एतौ आनि रखलक, दुख दैछ ॥

[५०२]

बिरह-विपति-दिन परतही, तजे सुखनि सब अंग ।
रहि अब-लौंअ दुखौ भये, चलाचली जिय-संग ॥

बिरह-विपति-दिन पड़ितहिं सब सुख, 'धनुष त्यागि देल सब अंग ।
दुःख अखन धरि बनल रहल अछि, चलकहेतु हा ! प्राणक संग ॥

[५०३]

नये बिरह बढ़ती बिथा, खरी बिकल जिय बाल ।
बिलखी देख परोसिन्यो, हरखि हँसी तिहि काल ॥

नूतन बिरहक बढ़ल व्यथासौं, मनमें विकलि बाल छलि पूर्ण ।
'धनुष' पड़ोसिनिकें व्याकुलि बुझि, हँसलि हर्षसौं तखनहि तूर्ण ॥

[५०४]

छतौ नेह कागद-हिये, भई लखाइ न टाँक ।
बिरह तचे उघर्यो सु अब, सेहुँड़ को सो आँक ॥

कागज-हियपर, प्रेम लिखल छल, से नहि 'धनुष' होइ छल लक्ष ।
पय-पसीज-सम बिरह-धाहसौं, मेल छिपौने से प्रत्यक्ष ॥

[५०५]

करके मीड़े कुसुम-लौं, गई बिरह-कुम्हिलाय ।
सदा समीपिनि सखिन हू, नीठि पिछानी जाय ॥

'धनुष' हाथसौं मलल सुमन-सन, गेलि बिरहसौं अति कुम्हिलाय ।
लगमें रहनिहारि सखि सबसौं, अधिक कष्टसौं चीन्हलि जाय ॥

[५०६]

लाल ! तिहारे बिरहकी, अगिनि अनूप अपार ।
सरसे बरसे नीर हू, मिटै न झर हू झार ॥

बिरह-वह्नि अनुपम, अपार अछि, 'धनुष' अहँक ई हे गोपाल !
ज्वलित हुइछ जल-वर्षा सेनहुँ, मेट न ग्रीष्म-तपहुँ सौं ज्वाल ॥

[५०७]

याके उर औरै कछु, लगी बिरहकी लाय।
पजरै नीर गुलाबकें, पियकी बात बुझाय॥

किछु विचित्र-सन एकरा हियमें, लागल विरह-आगि अछि आय।
'धनुष' गुलाब-सलिलसौं पजरै, पतिक 'बात' सौं जाय मिझाय॥

[५०८]

मरी, डरी कि टरी बिथा, कहा खरी ? चलि चाहि।
रही कराहि-कराहि अति, अब मुख आहि न आहि॥

की छह ठाढ़ि ? 'धनुष' चलि देखह, मुइलि, डरलि वा नीरुज भेलि।
कुहरि रहलि छलि अखनै अतिशय, 'आहि !' न कहिसक आब नवेलि॥

[५०९]

कहा भयो ? जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ।
उड़ी जाति कित हूँ गुड़ी, तऊ उड़ायक-हाथ॥

यदि गैलाह तों बिछुड़ि, भेल की ? 'धनुष' हमर मन तुअ मन साथ।
गुड्डी जाय कतहु उड़ि, तैयो—रहै उड़ौनिहारहिंक हाथ॥

[५१०]

जब-जब वै सुधि कीजिये, तब सबही सुधि जाहिं।
आँखिन आँखि लगी रहैं, आँखैं लागति नाहिं॥

जखन-जखन ओ मन पड़ि आवथि 'धनुष' तखन सब सुधि चल जाय।
हुनि दृग लागल रह मम दृगसौं, तैं मम आँखि न लगइछ हाय !

[५११]

कौन सुनै, कासौं कहौं, सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी जिय लेत हैं, ये बदरा बदराह॥

के सुनैत अछि; ककरासौं कहु ? 'धनुष' नाथ नहि सुधि मम आन।
ई बद बदरी, बाजी बदिकें, हमर हरक चाहैअछि प्राण॥

[५१२]

औरै भाँति भयेऽब ये, चौसर, चंदन, चंद।
पति-बिन अति पारत बिपत, मारत मारुत मंद॥

'धनुष' गेल मै आनै तरहक, चन्दन, चन्द्र तथा चौहार।
बिनु पति, अति विपत्ति ई दै अछि, मन्द-मन्द मारुत मोहि मार॥

[५१३]

नेकु न झुरसी बिरह-झर, नेह-लता कुम्हिलाति।
नित-नित होति हरी-हरी, खरी झालरति जाति॥

प्रेम-लता विरहाग्निसौं झरकि, 'धनुष' रञ्च नहि से कुम्हिलाय।
प्रत्युत नित-प्रति हरियर होइछ, अतिशय फरल-फुलायल जाय॥

[५१४]

यह बिनसत नग राखि कै, जगत बड़ो जस लेहु।
जरी बिषम जुर ज्याइये, आय 'सुदरसन' देहु॥

नष्ट हैत ई रत्न राखि हरि ! 'धनुष' लैह जगमें यश पूर्ण।
कठिन विषम ज्वरसौं अरेछ तिय, आबि दियौक 'सुदर्शन' चूर्ण॥

[५१५]

कित संसौ हंसौ यचत, समझुँ ए ये अनुमान।
बिरह-अगिन-लपटनि सकत, झपटि न, मीच-सचान॥

जीव-हंसके जिबइत लखिकै, नित सन्देह 'धनुष' अनुमानि।
विरह-वह्नि-ज्वालाक कारणे, मृत्यु-बाज नहि झपट फानि॥

[५१६]

करी बिरह ऐसी, तऊ—गैल न छाड़त मीचु।
दीन्हे हु चसमा चखनि, चाहे लहै न मीचु॥

विरह बनाय देल दूबरि अति, नीच मृत्यु पथ तदपि न त्याग।
चसमा-चक्ष-चढ़ौनहु 'धनुष' न, देखै तियकें, हा हतभाग !

[५१७]

मरन भलो बरु बिरहतें, यह बिचार चित जोय ।
मरन मिटै दुख एकको, बिरह दुहू दुख होय ॥

बरु, बिरहसौं मरण नीक थिक, 'धनुष' लखू चित-बोध बिचारि ।
मेट-मृत्युसौं दुःख एकका, बिरह दुहुकें देइछ पछारि ॥

[५१८]

बिगसत-नववल्ली-कुसुम-निकसत परिमल पाय ।
परसि पजारति बिरह-हिय, बरसि रहे की बाय ॥

नव लतिकाक फुलायल फूलक, हौ सुगंधि जे बाहर हंछ ।
वर्षा-कालक पवन पसरि हिय, उत्जलित 'धनुष' विरहीक करैछ ॥

[५१९]

औंधाई सीसी सु लखि, बिरह बरति बिललात ।
बीचहि सूख गुलाब गो, छींटौ छुयौ न गात ॥

'धनुष' बिरहसौं जरति-बरति लखि, देल सखी शीशी, तन ढारि ।
बीचहि में सुखैल, तन पड़ल न, एको ठोप गुलाबक वारि ॥

[५२०]

हौं ही बौरी बिरह-बस, कै बौरी सब गांव ।
कहा जानि ये कहत हैं, ससिहि सीतकर-नांव ॥

बिरह-बिवश हमहीं बताहि, वा—'धनुष' बताह भेल भरि गाम ।
नहि जानी की जानि कहै सब, सामल शशिक शीतकर नाम ॥

[५२१]

सोवत, जागत, सपन-बस, रस, रिस, चैन, कुचैन ।
सुरति स्यामघनकी सुरति, बिसराये बिसरै न ॥

'धनुष' सुतैत, जगैत, स्वप्नमें, स्नेह, क्रोध, सुख, दुख सब ठाम ।
कृष्णक प्रेम-स्मृत बिसरौनहुँ, बिसरि सकी नहि एको याम ॥

[५२२]

(सोरठा) कौड़ा आंसू-बूंद, करि सांकर बरुनी सजल ।
कीन्हे बदन निमूंद, दृग-मलंग डारे रहत ॥

अश्रु-बुन्द-कौड़ी-माला ओ, कै स-नीर पिपनी-जंजीर ।
'धनुष' सर्वदा मुँहकें बौने, पड़ल रहै अछि नयन-फकीर ॥

[५२३]

जिहि निदाघ-दुपहर रहै, भई माहकी राति ।
तिहि उसीरकी रावटी, खरी आवटी जाति ॥

'धनुष' जाहिमें ग्रीष्म-दुपहर, माघ-राति-सम भेल रहैछ ।
सोहो 'खस' क रावटीयहुमें, अति सन्तप्त कामिनी हंछ ॥

[५२४]

तच्यो आंच अति बिरहकी, रह्यौ प्रेम-रस भीजि ।
नैननि कै मग जल बहै, हियो पसीजि-पसीजि ॥

'धनुष' प्रेम-रसमें भीजलि छलि, अब अति बिरह-आँच जर नारि ।
पघिलि-पघिलि हिय, नयन-मार्गसौं, अहीं हेतु बहइत अछि वारि ॥

[५२५]

स्याम-सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा-तीर ।
अँसुवन करति तरौंस को, खिनक खरौंहौं नीर ॥

श्यामक सुधिकें 'धनुष' राधिका, ताकि रहलि अछि यमुना-तीर ।
नोर मिलाय सलोन करथि से, क्षण भरि धारक तरहुँक नीर ॥

[५२६]

गोपिन के अँसुवन भरी, सदा असोस अपार ।
डगर-डगर नै ह्वै रही, बगर-बगर के बार ॥

गोपीगणक नोरसौं पूरित, कहियो सुख न 'धनुष' अपार ।
…ल प्रवाहित नदी रहलि से, डगर-डगर घर-घर, ब्रज-द्वार ॥

[५२७]

बन-बाटनि, पिक-बटपरा, तकि बिरहिन मत मैन ।
'कुहौ कुहौ' कहि-कहि उठत, करि-करि राते नैन ॥

'धनुष' विपिन-पथमें पिक-डाकु-लखि बिरहिणिकें, दुगके लाल ।
मदनक मतसौं से उठैछ कहि 'कुहु ! कुहु !', कहँ छी गोपाल !

[५२८]

दिसि-दिसि कुसुमत देखियत, उपवन, बिपिन, समाज ।
मनो बियोगिनिको कियो, सर-पंजर रतिराज ॥

दश-दिशि देखि पड़ैछ फुलायल, फुलवाड़ी, वन 'धनुष' अपार ।
यथा वियोगिनिकें वेधकाहित, पिंजड़ा शरक बनौलक मार ॥

[५२९]

हिये और-सी ह्वै गई, टरी अवधिके नाम ।
दूजे करि डारी खरी, बौरी बौरे आम ॥

प्रथम अवधि बिति जैबक नामहि, हृदय भेल किछु आने, हाय !
'धनुष' दोसरो तकरा देलक, मजरल आम बताहि बनाय ॥

[५३०]

भो यह ऐसोई समो, जहाँ सुखद दुख देत ।
चैत चाँदकी चाँदनी, डारत किये अचेत ॥

समय ऐल अछि एहन आब ई, 'धनुष' सुखद जहँ अति दुख दैछ ।
चैत-चान-चानमी सुखद सखि ! कै अचेत हमरा खसबैछ ॥

[५३१]

गनतो गनिबे ते रहे, छत हू अछत समान ।
अब अलि ! ये तिथि-औम-लौं, परे रहैं तन प्रान ॥

'धनुष' हटल गणना करबहुलौं, रहलहु हो नहि रहक समान ।
नष्ट तिथिक सम आब सखी ! ई तनमें पड़ल रहैअछि प्राण ॥

[५३२]

जाति मरी बिछुरति घरी, जल-सफरीकी रीति ।
छिन-छिन होति खरी-खरी, अरी ! जरी यह प्रीति ॥

एको घड़ी जलक माँछक सम, 'धनुष' बिछुड़ने जाइछ प्राण ।
ई मुँहझौंसो प्रीति छण-हि-छण, तेयो बढ़इछ, हो नहि त्राण ॥

[५३३]

मार सु-मार करी खरी, मरी मरीहि न मारि ।
सीचि गुलाब घरी-घरी, अरी ! बरीहि न वारि ॥

मार मारि देलक हमारा सखि ! 'धनुष' मुइलिकें तों जनु मार ।
घड़ी-घड़ी छिटि तों गुलाब-जल, जरलै तनकें तों जनु जार ॥

[५३४]

रह्यौ ऐंचि अन्त न लह्यौ, अवधि-दुसासन बीर ।
आली ! बाढ़त बिरह, ज्यों—पंचालीको चीर ॥

अवधि-दुशाशन, विरह-चीरकें खिचइत पावल 'धनुष' न पार ।
द्रौपदीक चीरक समान ई—बढ़इछ विरह, प्राण भेल भार ॥

[५३५]

बिरह-बिथा-जल-परस-बिन, बसियत मो हिय-ताल ।
कछु जानत जल-थम्भ-विधि, दुरजोधन-लौं लाल !

विरह-व्यथा-जल-परस-बिना तों, करह हमर हिय-पोखरि-वास ।
हे हरि ! दुर्य्यौधन-सम जानह, की किछु जल-थम्भन-अभ्यास ?

[५३६]

सोवत सपने स्यामघन, हिल-मिलि हरत बियोग ।
तबहीं टरि कित हू गई, नींदौ नींदन जोग ॥

सूतल-समय स्वप्नमें श्रीहरि, हिलि-मिलि हरइत छला वियोग ।
'धनुष' कतहु तखनहि टरि भगला, सखि ! धिक निन्दो निन्दा-योग ॥

[५३७]

पिय बिछुरनको दुसह दुख, हरखि जात प्यौसाल ।
दुरयोधन-लौं देखियत, तजत प्रान यह बाल ॥

पति-बिछोह-दुख दुसह हुंछ, पर—'धनुष' मुदित निज नैहर जाय ।
दुर्योधन-समान ई बाला, प्राणक त्याग करैत लखाय ॥

[५३८]

कागद पर न लिखत बनत, कहत सँदेस लजात ।
कहि हैं सब तेरो हियो, मेरे हियकी बात ॥

नहि बनैछ कागज-पर लिखइत, होइछ लाज कहैत सनाद ।
नाथ ! अहँक हृदये मम हृदयक, कहत बात सब बिना बिवाद ॥

[५३९]

बिरह-बिकल बिनही लिखी, पाती दई पठाय ।
आंक-विहीनीयौ सुचित, सूनै बाँचत जाय ॥

बिरह-बिकलि बाला बिनु लिखनहि, पत्र पठाय पतिक पति देल ।
बिनु अक्षरहुँक 'धनुष' पत्रकें, शुन्य सुचित मे पति पढ़ि लेल ॥

[५४०]

रँगराती, राते हिये, प्रीतम लिखी बनाय ।
पाती काती बिरहकी, छाती रही लगाय ॥

'धनुष' पीय अनुरक्त हीयसौं, लिखल लालमैं पत्र बनाय ।
बिरह-व्यथा, काटक बुझि काती, पाँता छाती लेल लगाय ॥

[५४१]

तर झुरसी ऊपर गरी, कज्जल-जल छिरकाय ।
पिय पाती बिनही लिखी, बाँची बिरह बलाय ॥

झरकल तरसौं, गलल उपरसौं, सीँचि, कजरक जल दै योग ।
प्राणनाथ बिनु लिखल पत्रमें, 'धनुष' लेल पढ़ि बिरहक रोग ॥

[५४२]

कर लै, चूमि, चढ़ाय सिर, उर लगाय, भुज भेटि ।
लहि पाती पियको तिया, बाँचति, धरति समेटि ॥

करहीं, चूमि, चढ़ाय माथपर, उरसौं लगा, पकड़ि अकवारि ।
प्रीतम-पाँता-पाबि प्रियतमा, पढ़े 'धनुष' पढ़ि धरै सम्हारि ॥

[५४३]

मृगनैनी-दृगकी फरक, उर उछाह तन फूल ।
बिनही पिय-आगम उमगि, पलटन लगी दुकूल ॥

आँखि फड़कितहिँ, मृगनयनी-हिय, बढ़ल उछाह देह फुलिगेल ।
'धनुष' पतिक बिनु अयनहि लागलि, साड़ी बदलै हर्षक लेल ॥

[५४४]

बाम बाहु ! फरकत मिलै, जो हरि जीवन-मूरि ।
तो तोंहीसौं भेटिहौं, राखि दाहिनी दूरि ॥

बाम भुजा ! तुअ फड़कबसौं यदि, आबि जाथि प्रभु प्राणाधार ।
तौं दाहिना भुज-टारि 'धनुष' हम, मिलब तोहि सौं हर्ष अपार ॥

[५४५]

कियो सयानी सखिनसौं, नहि सयान, यह भूल ।
दुरै दुराई फूल-लौं, क्यो पिय-आगम-फूल ?

केलह चतुरइ, सखी सबहिसौं, ई चतुरइ न, 'धनुष' भ्रम थीक ।
पति-आगम-आनन्द सुमन-सम, छपत छपौने नहि नारीक ॥

[५४६]

आयो मीत बिदेसतें, काहू कह्यौ पुकारि ।
सुनि हुलसी, बिहँसी, हँसी, दोऊ दुहुन निहारि ॥

'ऐला पति बिदेशसौं'—कहलक, क्यो पुकारि, सुनि हर्षित भेलि ।
बिहुँसलि दूनू, दूनूकें लखि, 'धनुष' देखि दूनू हँसि देलि ॥

[५४७]

मलिन देह, वेहू वसन, मलिन बिरहके रूप ।
पिय-आगम औरै चढ़ी, आनन ओप अनूप ॥

'धनुष' मलिन तन, वैह मलिन पट, बिरह-व्यथासौं मलिन स्वरूप ।
पति आगमसौं आनि तरहक, कान्ति चढ़ल मुख-उपर अनूप ॥

[५४८]

कहि पठई जिय-भावती, पिय आवनकी बात ।
फूली आंगनमें फिरै, आंग न आंगि समात ॥

प्राणपियासौं अपना आवक, प्रीतम देल समाद पठाय ।
'धनुष' प्रफुल्ल फिरै आँगनमें अंग न आँगी मध्य समाय ॥

[५४९]

रहे बरोठेमें मिलत, पिय प्राननके ईस ।
आवत-आवतके भई, बिधिकी घरी, घरी स ॥

प्राणनाथ प्रीतम दलानपर सबसौं 'धनुष' मीलि रहलाह ।
अबइत-अबइत जे छण बीतल, विधिक घड़ी सम से लगलाह ॥

[५५०]

जदपि तेज रोहाल-बल, पलकौ लगीन बार ।
तउ ग्वैंड़ो घरको भयो, पैंड़ो कोस हजार ॥

'धनुष' यद्यपि अछि तेज तुरङ्गम, पलको भरि नहिं लागल बार ।
गामक गोड़ासौं धर धरि-पथ, तियकें बुझिपड़ कोश हजार ॥

[५५१]

बिछुरे जिय संकोच यह, बोलत बनै न बैन ।
दोऊ दौरि लगे हिये, किये निचौं हैं नैन ॥

'बिछुड़ल छलहुँ'—लाज ई मनमें, तैं किछु बजइत बनल न बैन ।
दौड़ि दुहू हियसौं लपटायल, कैने 'धनुष' अधोमुख नैन ॥

[५५२]

ज्यौं-ज्यौं पावक-लपट-सो, तिय हिय सौं लपटाति ।
त्यौं-त्यौं छुही गुलाब-सो, छतिया अति सियराति ॥

जौं-जौं आगिक धधरा-सम, आ—प्रिया 'धनुष' हियमें लपटाय ।
हैछ गुलाबक जल छीटल-सम, हृदय अधिक शीतल, सुखदाय ॥

[५५३]

पीठि दिये ही नेकु मुरि, कर घूँघट पट टारि ।
भरि गुलालकी मूठिसौं, गई मूठि सो मारि ॥

देने पीठि, रञ्च घुरि, करसौं—घोघक पटकें 'धनुष' हटाय ।
भरल अबीरक मुट्ठीसौं हनि, वशीकरण जनु गेलि लगाय ॥

[५५४]

दियो जु पिय लखि चखनमें, खेलत फागु खियाल ।
बाढ़त हू अति पीर सु न, काढ़त बनत गुलाल ॥

फागु खेलाइत-समय स-कौतुक, पति अबीर तकि दृगमें देल ।
अति पीड़ा बढ़नहु ओकारसौं, कनियों केउ बहार न गेल ॥

[५५५]

छुटत मुठी सँगही छुटी, लोक-लाज, कुल-चाल ।
लगे दुहुनि इकबेरही, चलि चित नैन गुलाल ॥

मुट्ठी छुटितहिं संगहि छुटल लोक-लाज, कुल-चालि समग्र ।
लागल चलि सङ्गहि अबार, हिय, दृग दुहुक दुहुकें भे व्यग्र ।

[५५६]

जु ज्यों उझकि झाँपति बदन, झुकति बिहँसि सतरात ।
तु त्यों गुलाल मुठी झुठी, झझकावत पिय जात ॥

जौं-जौं उझकि, झाँपि मुख, झुकइछ, हँसि कं भय-चेष्टा कर वाम ।
'धनुष' अबीरक झूठ मुट्ठासौं, तौं-तौं जाथि डेरबति श्याम ।

[५५७]

रस-भिजिये दोऊ दुहुनि, तउ टिक रहे, टरै न।
छबिसौं छिरकत प्रेम-रँग, भरि पिचकारी नैन॥

दुहू दुहुकें रस-सराबोरकें, तैयो अड़ले अछि न हटैछ।
दृग-पिचकारी-प्रेम-रङ्ग-भरि, सुन्दरता-युत 'धनुष' छिटैछ॥

[५५८]

गिरै कंप कछु-कछु रहै—कर पसीजि, लपटाय।
लीन्ही मुठी गुलाल भरि, छुटत झुठी ह्वै जाय॥

कर कँपने किछु खसल, रहल—किछु, करक पसेनासौं लपटाय।
लै अछि तौं अबीर मुट्ठो भरि, छुटितहिँ 'धनुष' झूठ भै जाय॥

[५५९]

ज्यौं-ज्यौं पट झटकति, हठति, हँसति, नचावति नैन।
त्यौं-त्यौं निपट उदार हू, फगुआ देत बनै न॥

जौं-जौं तिय आँचर हिलबैअछि, हठकर, हँसै, नचाबै नैन।
तौं-तौं अति उदार भैलहुँ पर 'धनुष' फागु ई देत बनै न॥

[५६०]

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी-गंध।
ठौर-ठौर झूमत झपत, भौंर-भौंर मद-अंध॥

आम्र-मञ्जरी-गन्ध-मत्तसौं, लित माधवी-मधुर-सुगन्ध।
थल-थलपर झुकैछ, औंघाइछ, भ्रमर-समूह 'धनुष' मद-अन्ध॥

[५६१]

यह बसन्त, न खरी, अरी! गरम, न सीतल बात।
कहि, क्यौं प्रगटे देखियत, पुलक, पसीजे गात॥

ई बसन्त थिक, नहि अति गरमी, 'धनुष' न सखि! अति शीत समीर।
कहू प्रगट ई किये देखि पड़; पुलकित घाम-भरल, तन थीर?

[५६२]

फिरि घरको नूतन-पथिक, चले चकित चित भागि।
फूल्यो देखि पलास-बन, समुहे समुझि दवागि॥

'धनुष' फुलायल लखि पलास-बन, बुझि सम्मुख दावानल, काँपि।
भागि चलल चित चकित पथिक नव, फिरकै निज घर-दिशि, चित चाँपि॥

[५६३]

अन्त मरेंगे, चलि जरैं, चढ़ि पलासकी डार।
फिरिन मरैं मिलि है अली! ये निरधूम अँगार॥

अन्तहुँ मरबे, चलह जाउ जरि, चढ़िकै 'धनुष' पलासक डारि।
मुइने पुनि नहि भेटि सकत सखि! बिन धूआँक आगि ई, झारि॥

[५६४]

नाहिन ये पावक प्रबल, लुवैं चलत चहुँ पास।
मानहु बिरह बसन्तके, ग्रीषम लेत उसास॥

प्रबल पावकक चारू दिशि सौं 'लू' क लपट नहि 'धनुष' चलैछ।
जानि पड़ैछ बसन्तक बिरहैं, ग्रीष्म दीर्घ श्वाशा अति लैछ॥

[५६५]

कहलाने एकत बसत, अहि-मयूर, मृग-बाघ।
जगत तपोबन-सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ॥

सर्प-मयूर, व्याघ्र-मृग बसइछ, 'धनुष' त्यागि भय, एकै सङ्ग।
ग्रीष्मक अति उष्णता विश्वकें, देलक बना तपोवन-रङ्ग॥

[५६६]

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन—तन माँह।
निरखि दुपहरी जेठकी, छाँहौं चाहति छाँह॥

'धनुष' सघन बन जा तिय बैसलि, सुटकलि सदन-शरीर-समाय।
जेठक दुपहरकें लखि चाहै, छाहरियो छाहरि अकुलाय॥

[५६७]

तिय तरसौंहैं मन किये, करि सरसौंहैं नेह।
धर परसौंहैं ह्वै रहे, झर बरसौंहैं मेह॥

सरस प्रेमकें बसा —नारि-हिय, मनकें लोभा 'धनुष' बनाय।
आबि छूबि धरणाक तखनहि, झड़ी-बान्हिकें घन घहराय॥

[५६८]

पावस-निसि-अँधियारमें, रह्यौ भेद नहि आन।
राति-द्योस जान्यो परत, लखि चकई-चकवान॥

पावस ओ रातुक अन्हारमें, 'धनुष' भेद रहि गेल न आन।
केवल लखि चकवा-चकवाक राति-दिनक होइत अछि ज्ञान॥

[५६९]

छिनकु चलति, ठठुकति छिनकु, भुज प्रीतम-गर डारि।
चढ़ी अटा देखति घटा, बिज्जु-छटा-सी नारि॥

क्षणिक चलै, क्षण ठमकि जाइ अछि, प्रीतम-गरसौं भुजा लगाय।
चमकि बिजुलि-सम कोठापर चढ़ि, 'धनुष' घटा देखै हर्षाय॥

[५७०]

पावक-झरतें मेह-झर, दाहक दुसह बिसेख।
दहै देह वाके परस, याहि दृगनु ही देख॥

अग्नि-ज्वाल-सम, मेघ-झड़ो थिक, अति दाहक ओ दुस्सहनीय।
'धनुष' जरै तन, ज्वाला लगने, झड़ी देखनहिसौं जर हीय॥

[५७१]

कुढँग कोप तजि रँगरली, करति जुवति जग जोय।
पावस बात न गूढ़ यह, बूढ़न हू रँग होय॥

देखू, जग-युवती, तजि तामस, ओ खटपट, झट करै विहार।
पावसमें ई बात गुप्त नहि, बुढ़िया 'धनुष' करै शृंगार॥

[५७२]

धुरवा होहि न, अलि! उठै, धुँआं धरनि-चहुँ कोद।
जारत आवत जगतको, पावस-प्रथम-पयोद॥

'धनुष' प्रथम दिवसक वर्षा-घन, सखा! जगत-जरबैत अबैछ।
महिक चतुर्दिशि, नैह धुआँथिक, ई कदापि घन भै न सकैछ॥

[५७३]

हठ न हठीली करि सकै, यह पावस-ऋतु पाय।
आँन गाँठ घुटि जाति त्यौं, मान-गाँठ छुटि जाय॥

'धनुष' हठीली, हठ नहि कै सक, एहि पावस-ऋतुकें ओ पाय।
आन गँठ जहिना सकत हो, मान-गँठ तहिना खुजि जाय॥

[५७४]

वेई चिरजीवो अमर, निधरक फिरौ कहाय।
छिन बिछुरे जिनकी न यहि, पावस आयु सिराय॥

घुमथु अमर ओ चिरजीवी भै, 'धनुष' सैह निर्भीक कहाय।
जनिक आयु एहि वर्षा-ऋतुमें, क्षण भरि बिनु वियोग बिति जाय॥

[५७५]

अब तजि नाउ उपाउको, आयो सावन मास।
खेल न रहिबो खेमसौं, कैम कुसमकी बास॥

युक्तिक नाम 'धनुष' अब छोड़ू, सावन ई आयल अति नीक।
कुसुम-कदम्ब-सुगन्धि-सुँघिकें, रहब कुशलसौं खेल न थीक॥

[५७६]

बामा, भामा, कामिनी, कहि बोलो प्रानेस!
प्यारी कहत लजात नहिं पावस चलत बिदेस॥

कुटिला, कलही, 'धनुष' स्वाथिनी, कहि बजाउ हमारा प्राणेश!
कहइत 'प्रिया' लाज नहि होइछ, जाइत पावसमें परदेश॥

[५७७]

उठि, ठक-ठक एतो कहा, पावसके अभिसार।
जानि परैगी देखियो, दामिनि घन-अँधियार॥

कथि ले करी एतेक बखेड़ा, पावसमें अभिसारक काल ?
देखलि गेनहुँ 'धनुष' तिमिरमें, जायब बूझलि बिजली बाल !

[५७८]

फिर सुधि दै, सुधि द्याय प्यो, यह निरदई निरास।
नई-नई बहुरौ दई, दई उसास-उसास॥

ई पावस निर्दयी निशामें, 'धनुष' हन्त हा ! होस देआय।
प्रीतमकें मनपाड़ि उखाड़ल, सखी ! एखाश नव-नव दुखदाय॥

[५७९]

घन-घेरो छुटिगो, हरषि–चली चहूँदिसि राह।
कियो सुचैनो आय जग, सरद-सूर-नरनाह॥

'धनुष' छुटल-घन-शत्रु-घेरावा, पथ प्रसन्न परिचालित भेल।
शरद-शूर-सम्राट आबि अति, जगकें चिन्ता-च्युतके देल॥

[५८०]

ज्यौं-ज्यौं बढ़ति विभावरी, त्यौं-त्यौं बढ़त अनन्त।
ओक-ओक सब लोक सुख, कोक-सोक हेमन्त॥

जौं-जौं रातिक मान 'धनुष' बढ़, तौं-तौं बढ़इछ मोद अनन्त।
घर-घरमें सब लोक सुखी हो, चकवा दुखी पाबि हेमन्त॥

[५८१]

कियो सबै जग काम-बस, जीते जिते अजेय।
कुसुम-सरहि सर-धनुष कर, अगहन गहन न देय॥

कामक बसकें देल जगत भरि, 'धनुष' जितल जे छला अजेय।
अगहन कामदेवकें करमें, 'धनुष' धनुष-शर गहै न देय॥

[५८२]

मिलि बिहरत, बिछुरत, मरत, दम्पति अति रसलीन।
नूतन विधि हेमन्त-ऋतु, जगत जुराफा कीन॥

मिलि बिहरैछ, मरैछ बिछुड़ितहिं, तिय-पिय रसमें रहलि समाय।
ई नव रीति चलाय हेम-ऋतु, जगत जुराफा देल बनाय॥

[५८३]

आवत-जात न जानिये, तेजहि तजि सियरान।
घरहि-जँवाई–लौं घट्यो, खरो पूस-दिन-मान॥

अबइत-अबइत बुझि नहि पड़इछ, त्यागि तेज, तप शीतल भेल।
'धनुष' पूस-दिन, घर-जमाय-सम, मान तकर अतिशय घटि गेल॥

[५८४]

लगति सुभग सीतल किरन, निसि-सुख दिन अवगाहि।
माह-ससी-भ्रम सूर-तन, रही चकोरी चाहि॥

माघ—चकोरी चन्द्रक भ्रमसौं, रवि-दिशि लखै 'धनुष' हर्षाय।
लागै शीतल, शुभग रश्मि रवि, रह रातुक दिनमें सुख पाय॥

[५८५]

तपन–तेज, तापन–तपन, तूल तुलाई माह
सिसिर-सीत क्योंहु न मिटै, बिन लपटे तिय नाह॥

रविकररश्मि, आगीक उष्णता, 'धनुष' तुराइ तूरसौं तूल।
शिशिर-शीत कहुना कम नहि हो, बिनु लपटहि तिय-पिय सुख-मूल॥

[५८६]

रहि न सकी सब जगतमें, सिसिर-सीतके त्रास।
गरमी भजि गढ़वै भई, तिय-कुच अचल मवास॥

'धनुष' रहल नहि सकल सृष्टिमें शिशिर-शीत-सन्तापक त्रास।
भागि भेलि गरमी गढ़ रखरी, कै कामिनि-कुच-किला-निवास॥

[५८७]

दुवैज-सुधा-दीधित-कला, वह लखि, दीठि लगाय।
मनो अकास-अगस्तिया, एकै कली लखाय॥

बाल-कलाधर-कला दृष्टि दे, 'धनुष' लखू झट ध्यान लगाय।
श्याम-अगस्त-सुमन-तरुमें जनु, कली एकटा शुभग फुलाय॥

[५८८]

धनि यह द्वैज जहाँ लख्यौ, तज्यो दृगनि दुख-दन्द।
तो भागनि पूरब उग्यौ, अहो! अपूरब चन्द॥

धन्य द्वितीया-शशि ई जे ; लखि, ई दृगकें दुख-संकट तजि देल।
अहा! अपूर्व अहिक भागे ई, 'धनुष' पूर्व-दिशि शशि उगि गेल॥

[५८९]

जोन्ह नहीं यह, तम वहै, किये जु जगत निकेत।
होत उदय शशिके भयो, मानो ससिहरि सेत॥

ई न चन्द्रिका, ई ओ तम थिक, जे जगमें निज घर कें लेल।
दौड़त चन्द्रक उदय सिहरिकें, से तम 'धनुष' श्वेत भे गेल॥

[५९०]

रनित भृंग-घंटावली, झरत दान-मधुनीर।
मन्द-मन्द आवत चल्यो, कुन्जर-कुन्ज-समीर॥

भ्रमरक घन्टा बाजि रहल अछि, 'धनुष' झरै गज-मद-मकरन्द।
मन्द-मन्द चल आबि रहल अछि, सुन्दर कुञ्ज-समीर-गयन्द॥

[५९१]

रही रुकी, क्योंहू स चलि, आधिक राति पधारि।
रहति ताप सब घोसको, उर लगि यारि बयारि॥

रुकलि छलि, कोनहु विधि चलिकें, 'धनुष' अर्ध निशि-मध्य पधारि।
प्रिया-पवन दिन भरिक तापकें, लागि हृदयसौं हरै समहारि॥

[५९२]

चुवत स्वेद-मकरन्द-कन, तरु-तरु-तर बिरमाय।
आवत दच्छिन-देस तें, थक्यो बटोही-बाय

चुवै स्वेद-मकरन्द-बुन्द सुचि, वृक्ष-वृक्ष तरमें अटकैछ।
पवन-पथिक पथ-श्रान्त परम भै, दक्षिण-दिशिसौं 'धनुष' अबैछ॥

[५९३]

लपटी पुहुप-पराग पट, सनी स्वेद-मकरन्द।
आवति नारि-नवोढ़-लौं, सुखद बाय गति-मन्द॥

पुष्प-पराग-वस्त्र-आच्छादित, सानल स्वेद-अतरसौं वेश।
'धनुष' नवोढ़ा-नारि-सम सुखद, मन्द-मन्द कर पवन प्रवेश॥

[५९४]

रुक्यो साँकरे कुंज-मग, करत झाँझि झुकरात।
मन्द-मन्द मारुत-तुरंग, खूँदत आवत-जात॥

'धनुष' पवन-हय, कुञ्ज-मार्गसौं, ठमकति, हींछति, अति दौड़ैत।
अबइत-जाइत अछि ओ अनुखन, मन्द-मन्द-गति युक्त-जमैत॥

[५९५]

कहति न देवरकी कुबत, कुल-तिय कलह डराति।
पंजर-गत मंजार ढिग, सुक-लौं सूखती जाति॥

लम्पटपना देवरक नहि कह, झगड़ासौं डरैछ कुल-नारि।
'धनुष' पींजड़ा-गत-बिलाड़ि-लग-सूगा-सम-सुखाय-सुकुमारि॥

[५९६]

पहुला-हार हिये लसै, सनकी बेंदी भाल।
राखति खेत खरी-खरी, खरे उरोजनि बाल॥

कुसुम हार हियमें लसैत अछि, सन सुमनक टिकुली लस भाल।
ऊँच कुचवाली ठाढ़ि 'धनुष' कर, रखबारी निज खेतक बाल॥

[५९७]

गोरी गदकारी परै, हँसत कपोलन गाड़।
कैसी लसति गँवारि यह; सुनकिरवाकी आड़॥

'धनुष' गोरि अछि, गुल-थुल सेहो, हँसइत गाल गहींड़ लखाव।
सुनकिरवा-पाँखिक टीकाकेँ ई गमारि निज छवि दर्शाव॥

[५९८]

गहराने तन गोरटी, ऐपनआड़ लिलार।
हूठ्यौ दै, इठलाय, दृग-कर गमारि सुवार॥

गोर गातमेँ, भरल युवापन, ऐपन-टीका शिरपर सोह।
नयन नचाय गमारिपनाकेँ, करइछ चोट, नारि मन मोह॥

[५९९]

लखि पग-धुनि चितई इतै, न्हात दियेई पीठि।
चकी, झुकी, सकुची, डरी, हँसी, लजीली डीठि॥

'धनुष' पीठि दे नहा रहलि छलि, लखल पद-ध्वनि सुनि एहि ओर।
झुकलि, लजेलि, डरेलि, चकित भै, लखि लज्जित दृगसौँ हँस जोर॥

[६००]

नहिं अन्हाय, नहिं जाय घर, चित चहुँ ओर तकि तीर।
परसि फुरहरी लै फिरति, बिहँसति, धँसति न नीर॥

'धनुष' नहाय न, घर जाइछ नहि, तट लखि चित्त प्रेम-वश भेलि।
जल छुवि, कुड़राकेँ घुरि आवे, हँसे किन्तु जलमेँ नहि गेलि॥



सातम शतक

[६०१]

मुँह पखारि, मुँडहरि भिजै, सीस सजल कर छ्वाय।
मौरि उचै, घूटैन तै, नारि सरोवर न्हाय॥

'धनुष' धोय मुँह, भाल-भिजाकेँ, स-जल हाथसौँ शिरकेँ छूबि।
शिरकेँ ऊँच, घुठी-बल लबिकेँ, नारि नहाइछ पोखरि डूबि॥

[६०२]

बिहँसति, सकुचति-सी हिये, कुच-आँचर-बिच बाँहि।
भीजे पट तटको चली, न्हाय सरोवर माँहि॥

बिहुसति, सकुचाइति-सनि हियमेँ, सर-स्नानके 'धनुष' निहारि।
कुच-आँचर-बिच राखि चललि कर, तितल पहिरि पट, तट-दिशि नारि॥

[६०३]

मुँह धोवति, ऐंड़ी घँसति, हँसति अनँगवति तीर।
धँसति न इन्दीवर-नयनि, कालिन्दी के नीर॥

मुँह धोइछ, एँड़ी घसैछ, हँसि, दारु उपर सुन्दरी सहर्ष।
कमलनयनि यमुना-जलमेँ नहि—धसै 'धनुष' उर अति उत्कर्ष॥

[६०४]

न्हाय, पहिरि पट भट कियो, बेंदी-मिस परनाम।
दृग चलाये घरको चली, बिदा किये घनश्याम॥

नहा, पहिरि झट साड़ी, टिकुली—लगबक लाथेँ, कैल प्रणाम।
बिदा कैल हरिकेँ चलाय दृग, अपनहु 'धनुष' देल चलि धाम॥

[६०५]

चितवत-चितवत हित हिये, किये तिरीछे नैन।
भीजे तन, दोऊ कँपे, क्योंहु जप निबरैन॥

'धनुष' लखे अछि, तिरछी दृगके, हृदय-प्रेमके दुहु जितयैछ।
तीतल तनसौं दुहु कँपै अछि, कानहु बिधिसौं जप न पुरैछ॥

[६०६]

दृग थिरकौंहैं, अधखुले, देह थकौंहैं ढार।
सुरति-सुखित-सी देखियत, दुखित गरभके भार॥

थिरकि रहल अछि आँखि आध खुजि, अछि थाकल-सन 'धनुष' शरीर।
गर्भ-भारसौं दुखित नायिका, रति-मुदिता-सनि लखि पड़ थीर॥

[६०७]

ज्यौं कर, त्यौं चिहुँटी चले,-ज्यौं चिहुँटी, त्यौं नारि।
छबिसौं गति-सी लै चली, चातुर कातनिहारि॥

जहिना कर चल, चुटकी तहिना, जहिना चुटकी तहिना ग्रीव।
चरखा-कटनिहारि चतुरा ई—'धनुष' नृत्य-गति गहै अतीव॥

[६०८]

अहे दहेंड़ी जनि धरै, जनि तू लेहि उतारि।
नीके है छींके छुवे, ऐसीही रहु नारि!

अय! दहीक मटकुरी धरू नहि, लिय नीचा नहि 'धनुष' उतारी।
सुन्दरि! ई क्रम नीक लगै अछि, सीक-पकड़ि अहिना रहु ठारि॥

[६०९]

देवर-फूल-हने जु, हठि, उठे हरषि अँग फूलि।
हँसी, करत औषधि सखिनु, देह-ददोरन भूलि॥

देवर हठकें हनल फूलसौं, ऊगि उठल आनन्दित अङ्ग।
सखि औषधि कर, तन-चकता बुझि, 'धनुष' हँसलि तिय, पाबि प्रसङ्ग॥

[६१०]

चलत जु तिय-हिय पिय दई, नख-रेखान-खरोंट।
सूखन देत न सरसई, खोंटि-खोंटि खत खोंट॥

नख-बछोर तिय-हियमें प्रीतम, 'धनुष' देल जे चलइत काल।
घाव-सरसता सुखै न द अछि, खोंटि-खोंटि खोंटीकें बाल॥

[६११]

पारयो सोर सुहाग को, इन बिन ही पिय-नेह।
उनिदौंही अँखिया ककै, कै अलसौंही देह॥

'धनुष' ख्यातिकें देलक पति-रति, बिना प्रीतमक प्रेमहि बाल।
कें औंघायल आँखि, बनौआ, अलसायल शरीर तत्काल॥

[६१२]

बहु धन लै अहिसान कै, पारो देत सराहि।
बैद बधू हँसि भेदसौं, रही नाह-मुख चाहि॥

बहुत बिभव लै पारा देलनि, 'धनुष' अधिक उपकार जनाय।
बैद-बधू हँसि हँसी मर्म-युत, बैद-पतिक दिशि देखि लजाय॥

[६१३]

ऊँचे चितै सराहियत, गिरह कबूतर लेत।
दृग झलकत, मुलकत बदन, तन पुलकत केहि हेत?

'धनुष' गँठ मारति लखि ऊपर, परयाकें परसंशह बाम!
दृग चमकैछ, हँसैछ तोर मुख, तन पुलकैछ; कहह की काम?

[६१४]

कारे बदन डरावने, कत आवत यहि गेह?
कइ वा लख्यो सखी! लखे, लगै थरथरी देह॥

कारी रङ्गक भयदायक नर, 'धनुष' एहि घर किऐ अबैछ?
एकरा के दिन देखि चुकल छी, सखि! तनमें थर-थरी लगैछ॥

[६१५]

औरि सबै हरषी फिरैं, गावत भरी उछाह।
तुही बहू! बिलखी फिरै, क्यों देवरके ब्याह?

'धनुष' औरि सखि मुदित घूमै अछि, भरि उमङ्गमें, गाबै गीत।
बिकलि घुमइ देवर-बिवाहमें—तोंही सुन्दरि! ई की रीत?

[६१६]

'रवि बन्दौ कर जोरि कै'—सुनत स्यामके बैन।
भये हँसौंहैं सबनिके, अति अनखौंहैं नैन॥

'हाथ जोड़ि, रविकें प्रणाम करु'—'धनुष' सुनि श्यामक ई बैन।
सब नारि सबहीक गेल बनि, हँसमुख अधिक, कोधितो नैन॥

[६१७]

तंत्री नाद, कबित-रस, सरस राग, रति-रङ्ग।
अनबूड़े बूड़े, तरे—जे बूड़े सब अङ्ग॥

बीणा-स्वर ओ 'धनुष' काव्य-रस, रतिक-रङ्ग, गायन अति नीक।
डुबल सैह जेपू बे डुबल नहि, तरल सैह जे डुबल अधीक॥

[६१८]

गिरितें ऊँचे रसिक मन, बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु-नरन कहँ, प्रेम-पयोधि पगार॥

'धनुष' गिरिहुँ सौं ऊँच रसिक मन, जहाँ सहस संख्यक डुबिगेल।
प्रेम-सिन्धु से पशु-नरगण-हित, सदा सुखायल भासित भेल॥

[६१९]

चटक न छाड़त घटत हूँ, सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न बरु फटै, रँग्यौ चोल-रँग-चीर॥

घटनहु सुन्दरता नहि छौड़ै, सज्जनगणक प्रेम गम्भीर।
'धनुष' उदास न होइछ फटनहु, रँगल मजीठक रँगमें चीर॥

[६२०]

सम्पति केस, सुदेस नर नमत, दुहुन इक बानि।
बिभव सतर कुच, नीचनर, नरम बिभवकी हानि॥

कुच, सज्जन नर, बिभव पाबि हो—नरम, दुहुक अछि एके बानि।
'धनुष' पाबि धन, ऐंठ नीच, कुच, नरम हुँछ भेने धन-हानि।

[६२१]

नये बिससिये लखि नये, दुर्जन दुसह सभाय।
आँटे परि प्रानन हरैं, काँटे-लौं लगि जाय॥

दुसह स्वभावक दुर्जनकें लखि, नम्र होइत, नहि करु बिश्वास।
लगने घात 'धनुष' काँटक-सम, पैर लागि कर प्राणक नाश॥

[६२२]

जेती सम्पति कृपनको, तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यौं-ज्यौं उरज, त्यौं-त्यौं होत कठोर॥

'धनुष' कृपणकें धन जतेक बढ़, बढ़ै कृपणता तकर ततेक।
जौं-जौं कुच बढ़ैछ, तौं-तौं हो, अति कठोर, नहि संशय एक॥

[६२३]

नीच हिये हुलसे रहैं, गहे गेंदको पोत।
ज्यौं-ज्यौं माथे मारिये, त्यौं-त्यौं ऊँचो होत॥

गेन्द-स्वभाव पकड़ि प्रमुदित रह, 'धनुष' नीच नर-हृदय लबार।
जौं-जौं ताहि माथमें मारी, तौं-तौं होइछ ऊँच अपार॥

[६२४]

कबहुँ छोटे नरनसौं, सरत बड़नके काम?
मढ़ो दमामा जात है, कहि चूहेके चाम?

छोट मनुजसौं, नहि कहियो हो, पैघ नरक जग एको काम।
कहुँ छारल जाय सकै की, कहु! बाचक लै मूषक चाम?

[६२५]

कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहि बीच।
नल-बल जल ऊँचे चढ़ै, अन्त नीच-को-नीच॥

कयौ कर यत्न करोड़ किऐ नहि, 'धनुष' न पड़ स्वभावमें बीच।
नलक बलें—जल ऊपर चढ़इछ, तैयो बहइछ नीच-हि-नीच॥

[६२६]

लटुवा—लौं प्रभु कर गहे, निगुनी गुन लपटाय।
वहै गुनी करते छुटै, निगुनीयै ह्वै जाय॥

हरिक हाथ गहितहिं लट्टू-सम, गुण-हीनोमें गुण लपटाय।
वेह गुणी हुनका करसौं छुटि 'धनुष' निगुंणी पुनि भै जाय॥

[६२७]

चलत पाय निगुनी-गुनी, धन, मनि, मुकुता-माल।
भेट होत जयसाहसौं, भाग्य चाहियत भाल॥

'धनुष' गुणी-निगुंणी चहो अछि, पाबि विभव, मणि, मुक्ता-माल।
जयसिंहक दर्शन हैबा ले, होबक चाही उत्तम भाल॥

[६२८]

यों दल काढ़े बलख तें, तैं जयसाह भुवाल!
उदर अघासुरके परें, ज्यौं हरि गाय, गुवाल॥

केल 'बलख'सौं बाहर दलकें, एहि बिधि कहूँ जयसिंह नरेश!
यथा अघासुर-पेट-पड़ल गो—गोप, बहार कैल गोपेश॥

[६२९]

अनी बड़ी उमड़ी लखें, असि-वाहक भट भूप।
मंगल करि मानो हिये, भो मुँह मंगल-रूप॥

सैना प्रबल 'धनुष' उमड़ल लखि शूर-वीर अधिकारी भूप।
मंगल-ग्रह-समान मन जानल, भेल भूप मुख, मङ्गल-रूप॥

[६३०]

रहति न रन जैसाह-मुख-लखि, लाखनकी फौज।
जाँचि निराखर हू चलै, लै लाखनकी मौज॥

जयसिंहक मुख लखि नहि रहइछ, लाखो शैन्य समरमें ठार।
मूर्खों माँगि 'धनुष' लै जाइछ, लाख-क—लाख इनाम अपार॥

[६३१]

प्रतिबिम्बित जैसाह-दुति, दीपति दरपन-धाम।
सब जग जीतनको कियो, काय-व्यूह मनु काम॥

शीश-महलमें प्रतिबिम्बित हो, जयसिंहक द्युति 'धनुष' अपार।
यथा मकरध्वजक जीतक हित, कायिक-व्यूह बनाएल मार॥

[६३२]

दुसह दुराजु प्रजानिको, क्यों न बढ़ै अति दंद?
अधिक अँधेरो जग करै, मिलि मावस रवि-चन्द।

अधिक दक्ष दुइ नृपतिक भेने, दुख प्रजाक बढ़ि किय नहि जाय?
जगकें अधिक अन्हार 'धनुष' कर, मिलिकें कुहूमें शशि-दिनराय॥

[६३३]

बसै बुराई जासु तन, ताहीको सनमान।
भलो, भलो कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जप, दान॥

जकरा तनमें बसैं दुष्टता, 'धनुष' हुनक सभकरै सम्मान।
'भल ग्रहकें' 'भल' कहि सब छोड़ै, करै दुष्ट-ग्रह-हित जप, दान॥

[६३४]

कहै इहै सब स्रुति, सुमृति, इहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही, पातक, राजा, रोग॥

स्मृति श्रुति सब गोह 'धनुष' कह, कहथि चतुर लोकौ एहि रूप।
तीन सताबे निबल मात्रकें, निश्चय—रोग, पाप ओ भूप॥

[६३५]

बढ़े न हूजै गुनन बिन, बिरद-बड़ाई पाय ।
कहत धतूरेसों कनक, गहनो गढ़ो न जाय ॥

पौनि 'धनुष' बड़ाइक पाबा, श्रेष्ठ, बिना गुण, भै न सकैछ।
'कनक' कहल गेलहु धथूरसौं, सोनक गहना गढ़ल न हैछ ॥

[६३६]

'गुनी-गुनी' सब कोउ कहै, निगुनी गुनी न होत ।
सुन्यो कहूँ तरु-अर्कते, अर्क-समान उदोत ?

गुणी ! गुणी !! सबहक कहलहिसौं, 'धनुष' न हो निगुणी गुणवान ।
सुनलहुँ कहियो अर्क-वृक्षसौं, ज्योतिक होयब अर्क-समान ॥

[६३७]

नाह गरज, नाहर-गरज, बोल सुनायो टेरि ।
फँसी फौजके बन्दिमें, हँसी सबन तन हेरि ॥

'धनुष' गरजि हरि, सिंहनाद-सम बोल जोरसौं देल सुनाय ।
शैन्य-व्यूह-बिच फसलि रुक्मिणी, हँसलि सबक तन लखि, हर्षाय ॥

[६३८]

संगति सुमति न पावही, परे कुमतिके धन्ध ।
राखो मेलि कपूरमें, हींग न होत सुगंध ॥

पड़ल रहै जे कुमति-चक्रमें, सत्सङ्गतियहुँ सुमति न आब ।
राखु मिलाय कपूरहुँ में पर—हींगु सुगन्ध 'धनुष' नहि पाब ॥

[६३९]

पर-तिय-दोष पुराण सुनि, लखी मुलकि सुखदानि ।
कस करि राखी मिश्र हू, मुँह आई मुसकानि ॥

सुनि पर-तिय-रति-दोष पौरवो, 'धनुष' बिहुँसि से लख बुध-ओर ।
पोंगा-पण्डित मुहधरि आयल, बिहुँसनिकें रोकल कें जोर ॥

[६४०]

सबै हँसत कर-तारि दै, नागरताके नाँव ।
गयो गरब गुनको सबै, बसे गँवारे गाँव ॥

'धनुष' नागरिकताक नामपर, कर-तारी दँ सब हँसि देल ।
गाम गमारगणक बसलासौं, गुणक गर्व सबटा चल गेल ॥

[६४१]

फिरि-फिरि बिलखी ह्वै लखै, फिरि-फिरि लेति उसाँस ।
साँई-सिर-कच-सेत-लौं, चुनत बिन्यो कपास ॥

'धनुष' लखै व्याकुलि भै पुनि-पुनि, पुनि-पुनि लैछ दीर्घ निश्वास ।
पति-शिर-श्वेत-केश-सम, उजड़ल—खेतहिं, कोदित चिढ़ै कपास ॥

[६४२]

नरकी अरु नल-नीरकी, गति एकै करि जोय ।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होय ॥

'धनुष' नरक ओ नल-नीरक गति, देखल जाइछ एक समान ।
जे जतबा नीचा भै चलइछ, पाबै ततबा उच्च-स्थान ॥

[६४३]

बढ़त-बढ़त सम्पति-सलिल, मन-सरोज बढ़ि जाय ।
घटत-घटत, सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाय ॥

बढ़ति-बढ़ति धन-जल बढ़लासौं, ध्रुव मन-कमल 'धनुष' बढ़ि जाय ।
धन-जल घटलहुँ मन-सरोज पुनि, नहि घट, बरु जाय कुम्हिलाय ॥

[६४४]

जो चाहौ चटक न घटै, मैलो होय न मित्त !
रज-राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त ॥

यदि चाही नहि घटै स्वच्छता, 'धनुष' मलिन मन हो नहि मित्र !
चिक्कन चितकें धन-धूरासौं, करु छुआय न अर्ह अपवित्र ॥

[६४५]

अति अगाध, अति औथरे, नदी, कूप, सर, बाय ।
सो ताको सागर, जहाँ—जाकी प्यास बुझाय ॥

नदी, कूप, पोखरि, सोती अछि, अति अथाह, अति उत्थर, क्षुद्र ।
'धनुष' पियास जाय जकराहीँ, जकरा-हित अछि सैह समुद्र ॥

[६४६]

मीत ! न नीत गलीत ह्वै, जौ धरिये धन जोरि ।
खाये, खरचे जौ जुरै, तौ जोरिये करोरि ॥

मित्र ! उचित ई नहि, गलि-पचिकें, 'धनुष' धरी धन सकल बटोरि ।
खायत, खरचानौँ यदि बाँचै, तौं अहँ जोड़ू, लाख-करोरि ॥

[६४७]

टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख-जोति ।
फिरति रसोईके बगर, जगर-मगर दुति होति ॥

'धनुष' नवीन धोल साड़ी ओ, मुखक-चमक अति सुन्दर सोह ।
भनसा-घरमें घूमि रहलि अछि, जग-मग ज्योति छह छ, मन मोह ॥

[६४८]

'मोहन संग समानको'—इहै कहत सब लोग ।
पान-पीक ओठन बनै, काजर नैनन जोग ॥

'मङ्कु समानताक शोभै अछि'—'धनुष' कहैछ सैह सब लोग ।
अरुण ओठमें, पान-पीक लल, काजर कारी आँखिक योग ॥

[६४९]

चित पितु-मारक जोग गुनि, भयो भये सुत सोग ।
फिर हुलस्यो जिय जोय—सी, ससुको जारज-जोग ॥

पितु-वध-योग—विचारि चित्तमें, 'धनुष' भेल सुत भेनहुँ शोग ।
भेला मनसौं मुदित ज्योतिषी, पुनि विचारिकें जारज-जोग ॥

[६५०]

परखो को करै ? तुही बिलोक बिचारि ।
कहि नर ? किहि सर ? राखियो, खरे बढ़े परपारि ॥

अरे ! करे के 'धनुष' परीक्षा ? तोँहा देखह बहुत विचारि ।
पोखरि कौन ? मनुष्य सकल के ? अति बढ़ने मर्याद सम्हारि !

[६५१]

कनक कनकतें सौगुनी, मादकता अधिकाय ।
वा खाये बौराय है, या पाये बौराय ॥

मादकता सौगुणा सोनमें, अछि धथूरसौँ 'धनुष' अधीक ।
हवैछ बताह धथूरक खने, सोनक पौलहिसौँ मद थीक ॥

[६५२]

ओठ उचै हाँसी भरी, दृग भौंहनकी चाल ।
मो मन कहा न पी लियो, पियत तमाखू लाल !

हँसी-युक्त दृग, भौंहु नचाकें, ओठ ऊँचके 'धनुष' मुरारि ।
पियल हमर मनकें की ओ नहि ? पिबइत पीनी, कह ब्रजनारि ॥

[६५३]

बुरो बुराई जो तजै, तो चित खरो सकात ।
ज्यों निकलंक मयंक लखि, गनै लोग उतपात ॥

जौं दुष्टता, दुष्ट मनुज यदि, तेयो मन अति 'धनुष' डरैछ ।
बिनु कलङ्क-रेखाक चन्द्र लखि, उत्पातक भय लोक करैछ ॥

[६५४]

भाँवरि अनभाँवरि भयो, करो कोटि बकवाद ।
अपनी-अपनी भाँतिको, छुटै न सहज सवाद ॥

'धनुष' घुमइ अथवा न घुमइ तौं, वा कर पतिसौं कोटि विवाद ।
छुटि नहि सकइछ निज-निज ढंगक, सुनु सुन्दरि ! स्वाभाविक स्वाद ॥

[६५५]

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार ।
अब अलि ! रही गुलाबकी, अपत, कँटीली डार ॥

लखने छलह सुमन ओ जहि दिन, 'धनुष' बहार गेल ओ बीति ।
भ्रमर ! गुलाबक पत्र-रहित अछि, डारि स-काँट आब विपरीति ॥

[६५६]

इहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाबके मूल ।
ह्वैहैं बहुरि बसन्त-ऋतु, इन डारन वे फूल ॥

अही आशसौं अलि अटकल अछि, 'धनुष' गुलाबक जड़िमें जाय ।
पुनि वसन्तमें अही डारिमें, वह फूल सब जैत फुलाय ॥

[६५७]

सरस कुसुम मँडरात अलि, न झुकि झपट लपटात ।
दरसत अति सुकुमारता, परसत मन न पत्यात ॥

सरस सुमनपर अलि मड़राइछ, 'धनुष' न झूकि, झपटि लपटाय ।
लखि कुसुमक कोमलता अति, मन—परसन करइत, नहि पतिआय ॥

[६५८]

बहकि बड़ाई आपनी, कत राचति ? मति भूल ।
बिनु मधु मधुकरके हिये, गड़ै न गुड़हर-फूल ॥

निज बड़ाइमें बहकि 'धनुष' छह, मुदित कतेक ? न बिसरह थाम !
बिना मधुक अड़हुल-फूल नहि, भ्रमरक हियमें लाग ललाम ॥

[६५९]

जदपि पुराने बक, तऊ—सरवर ! निपट कुचाल ।
नये भये तु कहा भयो ? ये मनहरन मराल ॥

यदपि पुरानो तदपि बकै थिक, गति अधलाह सर्वथा थीक ।
नव भेलहुँ की भेल ? सरोवर ! ई मराल मनमोहक नीक ॥

[६६०]

अरे हंस ! या नगरमें, जैयो आप बिचारि ।
कागनिसौं जिन प्रीति करि, कोकिल दई बिडारि ॥

अहो हंस ! अहँ एहि नगरमें, 'धनुष' जैब अति बूझि विचारि ।
जेह गाम पिक-जे कौआसौं—कैल प्रीति, कोकिला खेहारि ॥

[६६१]

को कहि सकै बड़ेनसौं, लखे बड़ी हू भूल ।
दीने दई गुलाबको, इन डारन वे फूल ॥

पैघो देखि आसावधानता, 'धनुष' पैघसौं क्यो न कहैछ ।
दैव गुलाब-स-काँट-डारिमें, देल सुमन सुन्दर, शोभैछ ॥

[६६२]

वे न यहाँ नागर बड़े, जिन आदर तो आब ।
फूलो अनफूलो भयो, गँवई-गाँव गुलाब ॥

'धनुष' एतै ओ अपर रसिक नहि, कर जे तुअ शोभा-सम्मान ।
फूलि गुलाब ! भेलह बिनु फूलक, गाम गमार सदय, गुणवान !

[६६३]

करलै, सूँघि, सराहिकै, सबै रहै गहि मौन ।
गंधी ! अन्ध गुलाबको, गवँई गाहक कौन ?

कर लै, सूँघि, सराहि आइ अछि, आन्हर गन्धी ! सब भै चूप ।
'धनुष' गुलाब-अतर-ग्राहक के—हेयत ? जा घुरि, अहँ रस-भूप ॥

[६६४]

को छूट्यो यहि जाल परि ? कत कुरंग ! अकुलात ?
ज्यौं-ज्यौं सुरझि, भज्यो चहत, त्यौं-त्यौं उरझत जात ॥

के छूटल एहि जाल 'धनुष' पड़ि ? व्यर्थ किऐक हरिन ! अकुलाह ?
जौं-जौं तों सोझराके चाहह—भागी, तौं-तौं अति ओझराह ॥

[६६५]

पट पांखि भखु कांकरे, सपा परेई संग ।
सुखी परेवा ! जगमें, एकै तुही बिहंग !

पाँखि-वस्त्र, भोजन कङ्कड़ अछि, रहै सर्वदा पड़बी सङ्ग ।
एक मात्र जगमें तों पड़बा ! छह यथार्थ सुख-सहित विहङ्ग !

[६६६]

स्वारथ, सुकृत न, श्रम वृथा, देखु विहंग ! बिचारि ।
बाज ! पराये पानि परि, तू पच्छीहि न मारि ।

स्वार्थ, सुकृति नहि, श्रमो व्यर्थ थिक, देखह 'चतुर' विचारि विहङ्ग !
आनक करपर डैलि न मारह, बाज ! जाति निजकैं कैं तंग ॥

[६६७]

दिन दस आदर पायकै करि लै आपु बखान ।
जौ-लौं काग ! सराध-पख, तौ-लौं तो सनमान ॥

दश दिन आदर पाबि 'चतुर' तों, के लें अपन बड़प्पन काग !
जावत श्राद्ध-पक्ष अछि तावत, तोहर आदर, लौ बलि-भाग ॥

[६६८]

मरत प्यास पिंजरा परो, सुवा दिननके फेर ।
आदर दै दै बोलियत, बायस बलिकी बेर ॥

दिनक फेरसौं पिंजड़ामें पड़ि, 'चतुर' पियासें सुगा मरैछ ।
सादर जाय बजाबल कौआ, बलिक समयमें, भक्ष परैछ ॥

[६६९]

जाके एकोएक हू, जग व्यवसाय न कोय ।
सो निदाघ फूलै फरै, आक डहडहो होय ॥

जकरा लौ जगमें एको नर, कतो नहि एको पल करैछ ।
लह-लह कर ओ आक ग्रीष्ममें, 'चतुर' फुलाइछ तथा फरैछ ॥

[६७०]

नहि पावस, ऋतुराज यह, सुनु तरवर ! मति भूल ।
अपत भये बिन पाइहै, क्यों नव दल, फल, फूल ?

'चतुर' न पावस, थिक वसन्त ई, वृक्ष ! सुनह, नहि देह बिसारि ।
तैयह कोना बिना पतझड़सौं, नव फल, फूल, पात ओ डारि ॥

[६७१]

सीतलताऽरु सुगंधकी, महिमा घटी न मूर ।
पीनसवारे जो तज्यो, सोरा जानि कपूर ।

कड़ा-रोगी यदि कपूरकैं, सोड़ा जानि 'चतुर' तजि देल ।
ीतलता, सुगन्ध-महिमा नहि—घटल, न दामे किछु कम भेल ॥

[६७२]

गहै न नेको गुन-गरब, हँसै सकल संसार ।
कुच-उचपद-लालच रहै, गरे परे हू हार ॥

ाकरा रञ्चन गुणक गर्व अछि, 'चतुर' हसैछ सकल संसार ।
नकरा उच्च पदक लोभ पड़ि, पड़ले रहै ग्रीवामें हार ।

६७३

मूड़ चढ़ाये हू रहै, परो पीठ कच-भार ।
रहै गरे परि राखिये, तऊ हियेपर हार ॥

ंध चढ़ौनहु 'चतुर' रहै अछि—पड़ल पीठियेपर कच-भार ।
दनि पड़नहु राखल जाइछ—तैयो, उरक ऊपरहिं माल ॥

[६७४]

जो सिर धरि महिमा मही, लहियत राजा-राव ।
प्रगटत जड़ता आपनी, मुकुट पहिरियत पाय ॥

हि-महानता जकरा शिरपर—धरि पावथि, राजा-महराज ।
ेँ जड़त्व सँ मुकुट पहिरि पद, प्रगट 'चतुर' कर मूर्ख-समाज ॥

[६७५]

चले जाहु, ह्याँ को करत, हाथिन कौ ब्यापार !
नहिं जानत या पुर बसत, धोबी, ओड़, कुम्हार ?

'धनुष' जाह चल; के करैत अछि एतै कहह हाथिक ब्यापार ?
नहि जानह एहि पुरमें बसइछ, धोबो, कुम्भकार, बेल्दार ॥

[६७६]

करि फुलेलको आचमन, मीठो कहत सराहि ।
रे गंधी ! मति-अंध तू, अतर दिखावत काहि ?

'धनुष' फुलेल-कुड़रके कइ जे, 'मीठ' प्रशंसा करै महान ।
अरे मूर्ख गन्धी ! तों ओकरहि, अतर देखबइह ? हा, धिक् ज्ञान ।

[६७७]

विषम वृषादितकी तृषा, जिये मतीरन सोधि ।
अमित अपार अगाध जल, मारौ मूड़ पयोधि ॥

जेठ-विषम-रौद्रक पियाससौं, ताकि तारबुज राखल प्राण ।
'धनुष' व्यर्थ थिक मारवाड़में, अमित अगाध पयोधि महान ॥

[६७८]

'यम-करि-मुख-तरहरि-परो'—यह धरि-हरि चित लाव ।
विषय-तृषा परिहरि अजौं, नरहरिके गुन गाव ॥

'यम-गज-मुख-तर 'धनुष' पड़लछो'-ई बुझि हरि-सुमिरण चित लाउ ।
आबहु छोड़ि विषम-तृष्णाकें, नित प्रति अहं नरहरि-गुण गाउ ॥

[६७९]

जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं ॥
ज्यों आँखिन सब देखिये, आँखि न देखी जाहिं ।

'धनुष' जनावल जे समस्त जग, जनलह नहि तों से हरि, हाय !
देखल जाय जाहि दृगसौं सब, देखि न पड़, दृग-सौं-दृग आय ॥

[६८०]

× जप, माला, छापा, तिलक, सरै न एकौ काम ।
मन काँचे, नाचै वृथा; साँचे राँचे राम ॥

'धनुष' तिलक, जप, माल, छापसौं, भै सक सिद्ध न एको काम ।
मन यदि काँचे, नाँच व्यर्थ थिक, होथि मुदित साँचहिसौं राम ॥

[६८१]

यह जग काँचो काँच-से, मैं समझ्यो निरधार ।
प्रतिबिम्बित लखिये जहाँ, एकै रूप अपार ॥

हम निश्चित-रूपें ई जानल, 'धनुष' काँच जग काँच-समान ।
देखू, जहाँ हइछ प्रतिबिम्बित, एके रूप अनेक, प्रमाण ॥

[६८२]

बुधि-अनुमान, प्रमान-श्रुति, किये नीठि ठहराय ।
सूछम गति परब्रह्मकी, अलख लखी नहि जाय ॥

'धनुष' सूक्ष्म अछि, ईश्वर-गति अति, अलख, अगोचर, लखल न जाय ।
बुद्धिक अनुभव, श्रुति-प्रमाणकें, कष्ट-सहित, किछु जानल जाय ॥

[६८३]

तौं लगि या मन-सदनमें, हरि आवैं किहि बाट ?
बिकट जटे जौ-लौं निपट, खुलैं न कपट-कपाट ॥

तावति एहि मन-भवनमें 'धनुष' औता कोन बाटसौं श्याम ?
कपट-केवाड़ जड़ल दृढ़तासौं, जावत खुजौ न से सुख-धाम ॥

[६८४]

× या भव-पारावारको, उलँघि पारको जाय ?
तिय-छबि-छाया-ग्राहिनी, गहै बीचही आय ॥

'धनुष' एहि संसार-सिन्धुकें, लाँघि जाय सकइछ के पार ?
धरै नारि-छवि-छाँह-ग्राहिनी, बीचहिमें, नहि अछि उद्धार ॥

[६८५]

भजन कह्यौ, तासौं भज्यौ, भज्यो न एकौ बार।
दूर भजन जासौं कह्यौ, सो तू भज्यो, गँवार!

गछलहु भजन, पड़ैलहु से तजि, 'धनुष' न भजलहु एकोबार।
दूर पड़ायब कहल जाहिसौं, ओकरहि तों भजिलैल गमार!

[६८६]

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाय।
तरि संसार-पयोधिको, हरि-नामै करि नाव॥

नहि उपाय अछि दोसर कोनो, 'धनुष' पकड़ि माला-करुआर।
हरि-नामक नौका बनाय झट, भ' जा जग-समुद्रसौं पार॥

[६८७]

यह बिरिया नहि औरकी, तू करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाय जिन, कीने पार पयोधि॥

समय न परक सहायताक ई, करहु आहि मल्लाहक खोज।
'धनुष' शिलाक नावपर जे चढ़ि, कैल पार दधि, दृग-अम्भोज॥

[६८८]

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन-बिस्तारन-काल।
प्रगटत निर्गुन निकटही, चंग-रंग गोपाल॥

गुड्डी-सदृश हरिक लीला अछि, 'धनुष' गुणक बिस्तारक काल।
दै प्रभु पीठि पड़ाथि दूर भै, निर्गुणसौं लग प्रगट गोपाल॥

[६८९]

जात-जात बित होत है, ज्यौं जियमें सन्तोष।
होत-होत ज्यौं होय तौ, होय घरीमें मोष॥

जेहि विधि जिय सन्तोष होइ अछि, होइत धन-जन 'धनुष' परोक्ष।
यदि ऐबाक समय हो तेहि विधि, तौं हो एक घड़ीमें मोक्ष॥

[६९०]

मजब्रासिनको उचित धन, जो धनरुचि तन-कोय।
सु चित न आयो सुचितई, कहौ कहां ते होय?

कोनो श्याम-तन-युत, घन-सम जौं, अछि धन, ब्रज-जन-हेतु यथार्थ।
'धनुष' न ओ यदि हियमें आयल, तौं कहु: कौन शान्ति, परमार्थ?

[६९१]

मोकी दई अनाकनी, फोकी परी गुहारि।
तज्यो मनो तारन-बिरद, बारक बारन तारि॥

आना-कानी, नीक कैल प्रभु! 'धनुष' पुकार कुरस भै गेल।
यथा तारि गज एक बेर अहँ, तारबाक यशकें तजि देल॥

[६९२]

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईं नहि भूल।
'दई-दई' क्यों करत है? दई दई, सु कबूल॥

दीर्घ-श्वाश नहि लैह दुःखमें, सुखमें स्वामीकें न बिसार।
'दैव! दैव!!' की 'धनुष' करह? कर—दैव देल जे से स्वीकार॥

[६९३]

कौन भाँति रहि है बिरद: अब देखिबी मुरारि!
बीधे मोसौं आनिके, गीधे गीधहि तारि॥

सुयश रहत थिर आब कोन विधि? तोहर, देखब 'धनुष' मुरारि!
आब आबि हमरासौं भिड़लहु, परिकल छलहु गृद्धकें तारि॥

[६९४]

बन्धु भये का दीनके? को तारयो? रघुराय!
तूठे-तूठे फिरत हो, झूठे बिरद कुलाय॥

बन्धु भेलहु कोन दीनक तों? 'धनुष' तारलहु ककरा? राम!
ख्याति झूठ फूसिक बजायकें, बनि सन्तुष्ट घुमह, की काम?

[६९५]

थोरेई गुन रीझते, बिसराई वह बानि !
तुम हू कान्ह ! मनो भये, आज-कलिके दानि ॥

छलह प्रसन्न ह्वैत थोड़े गुण; 'धनुष' बानि से देल बिसारि !
तहूँ आइ-कालिहक मे भेलह, प्रायः दानी कलिक मुरारि !

[६९६]

कबको टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम ! सहाय।
तुम हू लागी जगतगुरु ! जगनायक ! जग-बाय ॥

करी कखनसौं टेर दीन भै, नहि सहाय ह्वैछह ब्रजराय !
गेल लागि जग-गुरु ! प्रभु ! तोरो, विश्व-बसात 'धनुष' दुखदाय ॥

[६९७]

प्रगट भये द्विजराज-कुल, सुबस बसे ब्रज आय।
मेरो हरो कलेस सब, केसो, केसोराय !

निज मनसौं बसलाह आबि ब्रज, प्रगट भेला वर द्विज-कुल आय।
हमर हरू सब क्लेशकें 'धनुष' कृपया केशव, केशवराय ॥

[६९८]

घर-घर डोलत दीन ह्वै, जन-जन जाँचत जाय।
दिये लोभ-चसमा चखन, लघु हू बड़ो लखाय ॥

'धनुष' दीन भै घर-घर घूमै, नर-नरसौं याचना करैछ।
लोभक चसमा दृगपर देने, छोटोकें मन पैघ लखैछ ॥

[६९९]

कीजै चित सोई तरौं, जिहि पतितनके साथ।
मेरे गुन-औगुन-गुनन, गनौं न गोपीनाथ !

राखू ओहने चित्त जाहिसौं, 'धनुष' पतित सब सँग तरिजाइ।
हमरा गुण-अवगुण-समूहकें, कृपया—गनू न हे यदुराइ

[७००]

जो अनेक पतितन दिये, मो हू दीजै मोष।
तो बाँधौं अपने गुनन, जो बाँधे ही तोष ॥

मोक्ष अनेक पतितकें अहिना—देलह, तहिना हमरो देह।
'धनुष' बान्हनहिसौं यदि सुखही, बान्हि अपन गुणसौं तों लेह ॥

——:o:——

समास ! समास !! समास !!!



परिशिष्ट

[७०१]

कोऊ कोटिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो सम्पति यदुपति सदा, बिपति-बिदारन-हार॥

करै करोड़ो क्यो धन संग्रह, 'धनुष' करै क्या लाख-हजार।
किन्तु हमर सम्पति यदुपति छथि, सदा विपत्ति-विदारनिहार॥

[७०२]

ज्यौं ह्वैहौं त्यौं होहुँ गो, हौं हरि! अपनी चाल।
हठु न करौ, अति कठिन है, मो तारिबो गुपाल!

जेहन हैत होमक, हम होयब—तेहन अपन गतिसौं, हरि! जानु।
हठ नहि करू, गोपाल! कठिन अछि—अति, हमरा तारब, ध्रुव मानु॥

[७०३]

करौ कुबत जग कुटिलता, तजौं न दीनदयाल!
दुखी होहुगे सरल चित—बसत, त्रिभंगीलाल!

करतो निन्दा जग कर, तजब न—हमहु कुटिलता, दीनदयाल!
तजने हैत खोभ मम चितमें—दुःखित, 'धनुष' त्रिभंगीलाल!

[७०४]

मोहि तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज?
अपने-अपने बिरदकी, दुहुन निबाहन लाज॥

मोहि ताहि बकवाद बढ़ल अछि, देखी के जितैछ, यदुराज!
निज-निज यशक लाज निर्वाहक 'धनुष' दुहुके' अछिये काज॥

[७०५]

निज करनी सकुचौंहि कत, सकुचावत यहि चाल?
मोहुँसे अति बिमुख त्यौं, सनमुख रहि गोपाल!

छी लजेल निज करनीयहिसौं, एहि गतिसौं की लजबह फेरि?
मम-सम अति विमुखक सम्मुख तों, रहह गोपाल! 'धनुष' मुख फेरि॥

[७०६]

तौ अनेक अवगुन भरी, चाहै याहि बलाय।
जौ पति सम्पति हू बिना, जदुपति राखे जाय॥

जौं बिनु सम्पतियहुँ क 'धनुष' हरि, पति मम रखइत आधि बचाय।
तौं अति अवगुण—पूर्ण विसकें, चाहे हमर बलैया जाय॥

[७०७]

हरि! कीजत तुमसों यहौ, बिनती बार हजार।
जेहि-तेहि भाँति डरो रहौं, परो रहौं दरबार॥

हरि! हम अहंसौं विनय करछी, 'धनुष' येह प्रभु! बार हजार।
जाहि-ताहि—विधि, भयभीत हम, पड़ल रही नित तुअ दरबार॥

[७०८]

तौं बलियै भलियै बनी, नागर, नन्दकिसोर!
जो तुम नीके कै लख्यो, मो करनीकी ओर।

धन्यवाद! जौं नीक जेकां अहं, देखब हमरा करनी-ओर।
'धनुष' तखन तौं खूब नेल बनि, बस, मम बिगड़ल, नन्दकिशोर!

[७०९]

समय पलटि पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल?
भौ अकरुन करुनाकरो, यहि कुपूत कलिकाल॥

समय बदलने, बदल प्रकृतियो, 'धनुष' चालि निज के नहि त्याग?
करुणाकरो निठुर हा! भेला, पापी कलिमें हा! हत भाग!

[७१०]

अपने-अपने मत लगे, बादि मचावत सोर।
ज्यौं-त्यौं सबही सेइबो, एकै नन्दकिसोर॥

कोनहुविधि सबकें सेवक अछि, एक मात्र श्रीनन्दकिशोर।
निज-निज मतक हेतु व्यर्थ सब, 'धनुष' विवाद करथि कै जोर॥

[७११]

अरुन सरोरुह कर-चरन, दृग-खंज, मुख-चंद।
समय आय सुन्दरि सरद, काहि, न करति अनंद?

'धनुश' पैर, कर लाल कमल-सम, दृग खञ्जन, मुख चन्द्र-समान।
आबि समयपर शरद-सुन्दरी, कर ककरा नहि मुदित महान?

[७१२]

ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगि सतरौं हैं बैन।
दीरघ होहिं न नैकहूँ, फारि निहारे नैन॥

'धनुष' छोट नर पैघ न भै सक, बड़ल-चढ़ल कहि कतबो बैन।
आँखि गुड़ारि-गुड़ारि देखनहु; रञ्च न पैघ भै सकै नैन॥

[७१३]

औरै गति, औरै बचन, भयो बदन-रँग और।
द्यौसक ते पिय चित चढ़ी, कहैं चढ़ैहैं त्यौर॥

चालि, वचन, मुख-रङ्ग 'धनुष' अछि, आने तरहक तोहर बाल!
दुइ-एक दिन पति-चित-चढ़ली, चढ़ल भौंहु कह, तुअ चित-हाल॥

[७१४]

ठाढ़े गाढ़ै कुचनि ढिलि, को पिय-हिय ठहराय?
उकसौंहैं ही तो हिये, दई सबै उकसाय॥

कठिक, ठाढ़, तुअ कुच पिय-हिय बस, ताहि ठेलि के बस पिय-हीय।
'धनुष' देल उसकाय सबहिकें, उठल छातिये सखि! अबदीय॥

[७१५]

गुरुजन दूजे ब्याह को, नित उठि रहत रिसाय।
पतिकी पति राखति बधू, आपुन बाँझ कहाय॥

दोसर परिणय-हित नायकपर, नित उठि गुरुजन कोप करैछ।
अपनहि झूठ बाँझ बनि बाला, पतिक प्रतिष्ठा 'धनुष' रखैछ॥

[७१६]

घर-घर हिन्दुनि, तुरकिनी, देत असीस, सराहि।
पतिन राखि चादर-चुरी, तें राखी जयसाहि॥

घर-घर हिन्दुनि-तुरकिनि दें अछि, 'धनुष' अशीश सराहि विशेष।
सबक राखि पति, चूड़ी-चद्दरि—राखल, अहँ जयसिंह नरेश!

[७१७]

जनम जलधि, पानिप बिमल, भो जग आघु अपार।
रहै गुनी ह्वै गर परयौ, भलो न मुक्ता-हार!

जन्म जलधिसँ, कान्ति स्वच्छ अछि, जगमें दामो अहक अपार।
रहइ पड़ल गरदनिपर गुण-युत, 'धनुष' उचित नहि, मुक्ता-हार!

[७१८]

(सो०) पावस कठिन जु पीर, अबला क्यौं करि सहि सकै?
तेऊ धरत न धीर, रक्त-बीज-सम ऊपजे॥

अछि पावसक कठिन पीड़ा जे, कोना सकति सहि अबला नारि?
जखन जन्म-हिजड़ा एहि ऋतुमें, 'धनुष' सकै नहि धीरज धारि॥

[७१९]

प्यासे दुपहर जेठके, थके सबै जल सोधि।
मरुधर पाय मतीर हू, मारु कहत पयोधि॥

जेठ-दुपहरक तृषित, सकल थल—थाकल 'धनुष' नीरकें सोधि।
पाबि तारबुज मरु-भूमिमें, कह मरु-वासी ताहि पयोधि॥

[७२०]

समै-समै सुन्दर सबै, रूप-कुरूप न कोय ।
मनकी रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय ॥

समय-समय सब सुन्दर शोभे, सुभग-कुरूप 'धनुष' नहि कोय ।
मनोवृत्ति जेहरहि जतेक हो, तेहरहि ततेक सें होय ॥

[७२१]

सामा, सैन, सयान, सब, सबै साहके साथ ।
बाहु-बली जयसाह जू ! फते तिहारे हाथ ॥

रण-सामान, शौर्य, चातुरता, सुख—सब भूपक संगमें छैछ ।
'धनुष' किन्तु जयसिंह ! वीरवर, अहँक हाथमें विजय रहैछ ॥

[७२२]

काल्हि दसहरा बीति है, धरि मूरख ! जिय लाज ॥
दुर्यो फिरत कत द्रुमनमें नीलकण्ठ ! बिन काज ?

विजया-दशमी काल्हि जैत बिति, मूर्ख ! हृदयमें कर किछु लाज ।
तरु-तरु तरकों घुमइ नुकाइत, नीलकंठ ! तों 'धनुष' अकाज ?

[७२३]

हुकुम पाय जयसाहको, हरि-राधिक-प्रसाद ।
करी 'बिहारी' 'सतसई', भरी अनेक सवाद ॥

राधाकृष्णक कृपा-कोरसौं, जयसिंहक आज्ञाकें पाय ।
रचल 'विहारी' सरस 'सतसई' 'धनुष' अनेका स्वाद मिलाय ॥

[७२४]

सम्बत ग्रह, ससि, जलधि, छिति, छठ-तिथि, बासर-चन्द ।
चैत मास पछ कृष्णमें, पूरन आनँदकंद ॥

सम्बत सत्रह सौ उनैसमें, चैत-कृष्ण, षष्ठी, शनि-वार ।
'धनुष' पूर्ण ई भेल 'सतसई'—मोद-मूल, कविगण-आधार ॥

[७२५]

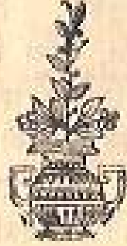
सतसैयाके दोहरे, ज्यों नावकके तीर ।
देखत मे छोटे लगें, घाव करें गम्भीर ॥

'सतसई'क सुन्दर दोहा सब, तथा 'धनुष' अचूक तिख-तीर ।
देखबमें तों छोट लगै अछि, किन्तु करैछ घाव गम्भीर ॥

पौष-शुक्ल, तिथि चतुर्दशी, दिन मंगल, सुन्दर ।
पांच गेल छल बाजि, छला अस्त-स्थित दिनकर ॥
सन् तेसर चालीस : साल छल, सम सुद-कारी ।
"धनुष" भेल ई पूर्ण 'मैथिली मध्य बिहारी' ॥
राधाकृष्णक कृपासौं, ग्रन्थ पूर्ण ई भेल अछि ।
एक मासमें चरहिपर, लिखल एकहि ! ई भेल अछि ॥

इत्यलम्





शुद्धाशुद्धि-पत्र

भ्रातृगण !

किन्तु प्रूफ-संशोधन, तथा कंपोजिटरक असावधानता एवम् अधिकांश मेशीनपर छपबाक समय टाइप उखड़ि एवम् टूटि जेबाक कारणे एहि पुस्तकमे किछु अधिक अशुद्ध रहि गेलअछि। अतएव हार्दिक प्रार्थना जे अपने लोकनि पुस्तक पढ़बासँ पूर्व कृपया निम्न-लिखित शुद्धाशुद्धिक अनुसार संशोधन करबाक अवश्य कष्ट कैल जाय।

पत्र-संख्या	भाषा	अशुद्ध	शुद्ध
मंगल-कामना	मैथिली	भरी	भारी
४	,,	ताथ	तीर्थ
१६	हिन्दी	गापाल	गोपाल
१६	,,	लहाछेग	लहालेह
२०	मैथिली	चन्द्रका	चन्द्रिका
२०	,,	ओँ हड़ाइ	ओँ हड़ाइल
२४	,,	अंग-कान्ति	अंग-कान्ति
३०	,,	मालिन	मलिन
३१	,,	अन	आन
३३	,,	विचारा	विचार
४०	,,	गार	गोर
४२	,,	साहसक	साहसकें
५२	हिन्दी	बाढ़िचले	बढ़िचले।
५८	मैथिली	चनके	वचनकें

पद्य—संख्या	भाषा	अशुद्ध	शुद्ध
६२	मैथिली	खीभ	खीभे
६५	,,	तुहक	तुहुक
६६	हिन्दी	सजल	सलज
७२	मैथिली	चञ्चलटा	चञ्चलता
७२	,,	त्रिय	हिय
८१	हिन्दी	और	औरे
८६	,,	बधक	बेधक
१०१	मैथिली	चकार	चकोर
११८	हिन्दी	हांनि	होति
१२०	,,	तेद	सेद
१३२	मैथिली	करासी	कपासी
१३७	,,	समुदमें	समुद्रमे
१४०	,,	कन्ति	कान्ति
१४२	,,	तजछ	तजैछ
१६४	,,	छछ	छैछ
१६५	,,	चित्रके	चित्रकें
१६७	हिन्दी	ह	हैं
१६६	मैथिली	मुखक	मुखकें
१७७	,,	मन हा	मन हो
१८३	हिन्दी	बूढ़	बूढ़े
१६४	,,	नीदम	नौंदम
२००	,,	ठार	ढार
२०५	मैथिली	गुरुजन	जनहुँक
२१५	हिन्दी	दढ़	द्रढ़
२२७	मैथिली	कलह	कैलह

पद्य—संख्या	भाषा	अशुद्ध	शुद्ध
२३४	मैथिली	हदय	हृदय
२५२	,,	भ	मैं
२५७	,,	साड़ा	साड़ी
२५८	हिन्दी	मै ले	मैं ले
,,	,,	तिहाग	तिहारो
२५६	मैथिली	बसले छा	बसले छो
२६१	हिन्दी	दर्या	दयो
२६२	,,	साहति	सोहति
२६४	,,	छयाली	छबीली
,,	मैथिली	चूण	चूर्ण
२६६	,,	पनाक	पनाके
२६६	हिन्दी	सौत	सौति
२७१	,,	निवाजिवा	निवाजियो
२७३	मैथिली	साखि	सखी
२७५	,,	हरति	हरित
२७७	,,	ज्वालासौं	ज्वालसौं
२८०	,,	मुरला	मुरली
,,	,,	पाताम्बर	पीताम्बर
२८१	हिन्दी	गाढ़ा	गाढ़ी
२८३	मैथिली	'रहा'	'रहो'
,,	,,	नाखि	नौखि
,,	,,	मथना	मथनी
,,	,,	नारी	नारि
२८४	,,	काध	कोधे
२८७	,,	काधक	कोधक

पद—संख्या	भाषा	अशुद्ध	शुद्ध
२८८	हिन्दी	कर-कर	करि-करि
२८६	मैथिली	ता	तों
"	"	अध्य	अर्घ्य
२९१	हिन्दी	ठाढ़	ठाढ़े
"	मैथिली	आ छथि	औ छथि
२९२	हिन्दी	जार	जोर
२९३	"	तोहमें	तोहीमें
२९८	मैथिली	शोम	शोभा
३०४	"	परस	परसे
३०५	"	प्रम	प्रेम
३१०	"	विलास	विकास
३१२	"	हाय !	दाय !
३१३	हिन्दी	घुघट	घूँघट
"	मैथिली	रश्च	रक्ष
३२५	"	बहलाय	बहराय
३२६	"	बन	बनौ
३३०	"	प्रातम	प्रीतम
३५३	"	द पीठ	दे पीठ
३५७	"	रक्ष	रक्ष
३६४	"	विरहमें	विहारमें
३६५	हिन्दी	और	औरे
३७४	मैथिली	भवनक	भवनकें
३७८	"	भल	भेल
३९२	हिन्दी	करै न	करै

पद्य—संख्या	भाषा	अशुद्ध	शुद्ध
४००	मैथिली	सुयादयक	सूर्योदयक
४०७	"	किय	कियौ
४११	हिन्दी	रग	रंग
४१२	मैथिली	बटोहा	बटोहा
४१८	हिन्दी	रग	रंग
४२९	मैथिली	बन	बैन
४३६	"	चष्टासौं	चेष्टासौं
४३७	"	ता	तों
४३८	"	दव !	देव !
"	"	पड़ेछ	पड़ैछ
४४५	"	सङ्कोच	सङ्कोच
४५०	हिन्दी	यौंटरु	ब्यौंटरु
४५५	"	टिकु	ठिकु
४७२	"	रुधी	रुँधी
४७७	मैथिली	दत	देत
५०३	"	व्यथासौं	व्यथासौं
५०६	मैथिली	हछ	हैछ
५१५	"	झपट	छपटै
५१६	"	चक्ष	चक्षु
५२६	"	नारसौं	नीरसौं
५३५	हिन्दी	कुस मत	कुसुमित
५४५	मैथिली	आन्नद	आनन्द
५५२	"	आ	ओ
५५६	"	मुठा	मुठी
५६७	हिन्दी	ह	है

पृष्ठ—संख्या	भाषा	अशुद्ध	शुद्ध
५६८	मैथिली	चकर्वीक	चकवींकें
५७०	हिन्दी	डुगल	डुगन
५७६	मैथिली	पारवस	पायस
५८७	,,	व्याम	व्योम
५९३	,,	नवोढ़ा	नवोढ़
५९५	हिन्दी	पजर	पंजर
५९८	,,	हठलाय	इठलाय
६०५	मैथिली	कानहु	कोनहु
६०८	,,	उतारा	उतारि
६१०	,,	द	दं
६१२	,,	वद्य	वैद्य
६१७	,,	जेपू वे	जे पूर्व
६१६	हिन्दी	रग्यो	रंग्यो
६२१	मैथिली	विाश्वस	विश्वास
६२७	,,	गुणा	गुणी
६२८	,,	है	अहं
६३१	मैथिली	जगके	जगकें
६३५	,,	श्रष्ट	श्रेष्ठ
,,	,,	गेलहु	गेलहुँ
६३६	,,	ज्याातिक	ज्योतिक
६४१	,,	भे	भौ
६४७	,,	हछ	हंछ
६६७	,,	गेह	यंह
६६१	,,	दव	वंव

'मैथिली-मन्दिर'क नियमावली

श्रद्धेय सज्जन-समुदाय !

आधुनिक सुन्दर एवम् सुव्यवस्थित प्रकाशन-प्रणालीक अनुकूल मैथिली-साहित्य-प्रकाशित करबाक एवम् यत्र-तत्र प्रकाशित मैथिली-ग्रन्थ सबकें एकत्र कै विक्रय करबाक मिथिलामें कोनो स्वतन्त्र, सुसंगठित एवम् व्यापक मैथिली-साहित्य-संस्थाक सर्वथा अभावो मैथिलीक सर्वाङ्गीण उन्नतिमें प्रधान बाधक प्रमाणित भै रहल अछि। ताही अभावकें पूर्ण करबाक अविचल अभिलाषासौं एवम् मैथिली-सेवा करबाक चिरसंचित हार्दिक पवित्र भावनासौं प्रेरित भै हम स्वय एहि 'मैथिली-मन्दिर'क स्थापना करबाक दुस्साहस-मात्र कैल अछि। अतएव सम्पूर्ण मिथिला-निवासी सज्जन-समुदायसौं करबद्ध प्रार्थना अछि जे अपने लोकनि मैथिली-उन्नति-भव्य-भावनासौं प्रेरित भै एहि नवजात 'मैथिली-मन्दिर' के सब प्रकारें पूर्ण सहायता कै 'मन्दिर' कें सुदृढ़, सुव्यवस्थित एवम् पूर्ण प्रभावशाली संस्था बनेबाक कृपा अवश्य करैत, हमरा चिरउपकृत कैलजाय।

नियम—

(१)—जे महानुभाव ॥०) आना प्रवेश-शुल्क देताह, ओ 'मैथिली-मन्दीर'क स्थायी ग्राहक मानल जैताह।

(२)—स्थायी ग्राहकसौं पुस्तकक चतुर्थांश नहि लेल जैतनि। किन्तु जाहि दिनसौं स्थायी ग्राहक हेताह ताहि दिनसौं जतबा पुस्तक 'मन्दिर'-द्वारा प्रकाशित होयत ओ सब पुस्तक हुनका लेबाक कृपा एवम् कष्ट अवश्य करक पड़तनि। पूर्व-प्रकाशित पुस्तक सब लेब अथवा नहि लेब हुनका कृपापर निर्भर रहतनि। यदि लैताह तौ पुस्तकक पूर्ण मूल्य देमक पड़तनि।

(३)—स्थायी-ग्राहककेँ पुस्तक वी० पी० पी० करबासौँ १५ दिन पूर्व पत्र-द्वारा बालोँ दे देल जैतनि। वी० पी० पी० छुटि देने हुनक नाम स्थायी ग्राहकक नामावलीसौँ हटाय देल जैतनि।

(४)—स्थायी-ग्राहक-शुल्क कोनो अवस्थामे घुराओल नहि जा सकैछ।

(५)—साधारण ग्राहक प्रति रुपैया चारि आना नगद अथवा डाक-टिकट ग्राहकक संग अवश्य पठैबाक कृपा करथि।

(६)—स्थायी एवम् साधारण ग्राहककेँ वी० पी० पी० एवम् पैकिंग-खर्च देमक पड़तनि।

७)—यदि 'मन्दिर'क कार्यकर्ता-द्वारा पुस्तक, कुछ प्रकारक ग्राहक लोकनिक सेवामे पठाओल जैतनि तौँ वी० पी० पी० क खर्चांक आधा खर्च हुनका लोकनिकेँ देमक पड़तनि।

(८)—जे क्यो मैथिली-साहित्य-भक्त-श्रीसम्पन्न-सज्जन-सहृदय 'मन्दिर' केँ एकबेर पाँच सौ टाका प्रदान करबाक कृपा करताह ओ 'मन्दिर' क संरक्षक, एक सौ टाका प्रदान करताह ओ पुष्ट-पोषक, जे पचीस टाका प्रदान करताह ओ सहायक मानल जैताह। हुनका लोकनिक चित्र, परिचय एवम् नाम इत्यादि सेहो 'मन्दिर'-द्वारा प्रकाशित पुस्तक सबमे सुविधानुसार अवश्य प्रकाशित कैल जैतनि।

(९)—जे क्यो सज्जन मैथिली-पुस्तक प्रकाशित एवम् छपाबए पुस्तकके विक्रय कराबक चाहथि, अथवा जनिका जे कोनो विशेष-विषय बुझबाक होइन, पत्र-व्यवहार करथि।

विनीत—

'मैथिली-मन्दिर' } श्रीधनुषधारी दास,
कृष्णगढ़, अध्यक्ष।
सुलतानगंज, भागलपुर।